मानिनी यश मुक्तामाला

द्वितीय पुष्प

लगन प्रभु से लगा बैठे,
जो होगा देखा जाएगा ।
उन्हें अपना बना बैठे,
जो होगा देखा जाएगा ॥

२१-सितम्बर-२०१५
श्री मान मंदिर सेवा संस्थान
गह्वर वन, बरसाना, मथुरा, उत्तर प्रदेश

प्रथम संस्करण

प्रकाशित २१ सितम्बर २०१५

राधा जन्माष्टमी, भाद्रपद, शुक्लपक्ष, २०७२ विक्रमी सम्वत्

सर्वाधिकार सुरक्षित २०१५ – श्री मानमंदिर सेवा संस्थान

Copyright© 2015 – Shri Maan Mandir Sewa Sansthan

http://www.maanmandir.org

http://www.brajdhamseva.org

ms@maanmandir.org

ISBN 9788192807355

अंतर्वस्तु

अंतर्वस्तु..... i
प्रकाशकीय.....ii
श्री रमेश बाबा जी महाराज..... 1
सर्वत्याग की शिखर – गोपीजन..... 7
सतत्-चिन्तन 14
भागवत-भक्ति..... 18
हरि भक्तन सों गरब न करिबो..... 23
असाधारण सामर्थ्य के स्रोत – 'भक्तजन' 29
भागवत धर्म से होगा 'परमात्म तत्त्व का बोध'..... 34
ब्रह्म का सच्चिदानन्द-स्वरुप व प्रेमोत्पत्ति-क्रम..... 39
भगवद्-भागवत करुणा का एक दृश्य..... 44
ब्रह्म की रसरूपता..... 50
वासना रहित वाणी से होगा प्रभु की ओर प्रवाह 54
अर्थ के रूप में अनर्थ..... 61
आसक्ति रहित कर्म से नहीं होगा दोष..... 66
महत्-दर्शन सर्वमङ्गल मूल..... 69
प्रमाद से पतन..... 74
भक्ति का सार –'भगवद्-भागवत सेवा' 79
सर्वात्मभाव की शरणागति..... 84
महत्-चरण-रज से निर्गुणा भक्ति का अवतरण..... 93
एक भयावह दृश्य भवसागर की यात्रा का 102
जीवन की सार्थकता..... 112
अध्यात्म का प्रवेश द्वार – 'असंगता' 116
मोरें तुम प्रभु गुरु पितु माता 120
राधे किशोरी दया करो 123

प्रकाशकीय

सन्त संग यदि जीवन में नहीं है तो कोई भगवान् की ही माँ क्यों न हो, वह विनाश को प्राप्त हो जाएगी। कैकयी इसका सबसे बड़ा उदाहरण है। सत्संग प्राप्त सच्चा भक्त अकेला ही सारी सृष्टि को पावन बना देता है। संतों के संग की प्राप्ति जीवन की सबसे बड़ी उपलब्धि है।

ब्रज के विरक्त संत श्रद्धेय श्री रमेश बाबा जी, जिनकी अहैतुकी कृपा समग्र ब्रजवासियों को निरन्तर मिलती रही है, जिससे उनका नित्य सत्संग सहज उपलब्ध है और घर-घर भगवन्नाम, गुण, रूप, संकीर्तन के आनन्द की रसधारा प्रवाहित हो रही है, उसी रसधारा में हम सभी अवगाहन करें और अपने को कृतार्थ करें। इसके लिए '**मानिनी यश मुक्तामाला' द्वितीय पुष्प** आपकी सेवा में समर्पित है।

श्री रमेश बाबा जी महाराज

गुण-गरिमागार, करुणा-पारावार, युगललब्ध-साकार इन विभूति विशेष गुरुप्रवर पूज्य बाबाश्री के विलक्षण विभा-वैभव के वर्णन का आद्यन्त कहाँ से हो यह विचार कर मंद मति की गति विथकित हो जाती है।

विधि हरि हर कवि कोविद बानी । कहत साधु महिमा सकुचानी ॥
सो मो सन कहि जात न कैसे । साक बनिक मनि गुन गन जैसे ॥

(रा.बा.का.दोहा.३क)

पुनरपि

जो सुख होत गोपालहि गाये ।
सो सुख होत न जप तप कीन्हे कोटिक तीरथ न्हाये ।

(सू. वि. प.)

अथवा

रस सागर गोविन्द नाम है रसना जो तू गाये ।
तो जड़ जीव जनम की तेरी बिगड़ी हू बन जाये ॥
जनम-जनम की जाये मलिनता उज्वलता आ जाये ॥

(बाबा श्री द्वारा रचित - ब्र. भा. मा.से संग्रहीत)

कथनाशय इस पवित्र चरित्र के लेखन से निज कर व गिरा पवित्र करने का स्वसुख व जनहित का ही प्रयास है।

अध्येतागण अवगत हों इस बात से कि यह लेख, मात्र सांकेतिक परिचय ही दे पायेगा, अशेष श्रद्धास्पद (बाबाश्री) के विषय में । सर्वगुणसमन्वित इन दिव्य-विभूति का प्रकर्ष-आर्ष जीवन-चरित्र कहीं लेखन-कथन का विषय है?

"करनी करुणासिन्धु की मुख कहत न आवै"

(सू.वि. प.)

मलिन अन्तस् में सिद्ध संतों के वास्तविक वृत्त को यथार्थ रूप से समझने की क्षमता ही कहाँ, फिर लेखन की बात तो अतीव दूर

है तथापि इन लोक-लोकान्तरोत्तर विभूति के चरितामृत की श्रवणाभिलाषा ने असंख्यों के मन को निकेतन कर लिया, अतएव सार्वभौम महत् वृत्त को शब्दबद्ध करने की धृष्टता की।

तीर्थराज प्रयाग को जिन्होंने जन्मभूमि बनने का सौभाग्य-दान दिया। माता-पिता के एकमात्र पुत्र होने से उनके विशेष वात्सल्यभाजन रहे । ईश्वरीय-योजना ही मूल हेतु रही आपके अवतरण में। दीर्घकाल तक अवतरित दिव्य दम्पति स्वनामधन्य श्री बलदेव प्रसाद शुक्ल (शुक्ल भगवान् जिन्हें लोग कहते थे) एवं श्रीमती हेमेश्वरी देवी को संतान-सुख अप्राप्य रहा, संतान-प्राप्ति की इच्छा से कोलकाता के समीप तारकेश्वर में जाकर आर्त पुकार की, परिणामतः सन् १९३० पौष मास की सप्तमी को रात्रि ९:२७ बजे कन्यारत्न श्री तारकेश्वरी (दीदी जी) का अवतरण हुआ, अनन्तर दम्पत्ति को पुत्र-कामना ने व्यथित किया। पुत्र-प्राप्ति की इच्छा से कठिन यात्रा कर रामेश्वर पहुँचे, वहाँ जलान्न त्याग कर शिवाराधन में तल्लीन हो गये, पुत्र कामेष्टि महायज्ञ किया। आशुतोष हैं रामेश्वर प्रभु, उस तीव्राराधन से प्रसन्न हो तृतीय रात्रि को माता जी को सर्वजगन्निवासावास होने का वर दिया । शिवाराधन से सन् १९३८ पौष मास कृष्ण पक्ष की सप्तमी तिथि को अभिजित मुहूर्त मध्याह्न १२ बजे अद्भुत बालक का ललाट देखते ही पिता (विश्व के प्रख्यात व प्रकाण्ड ज्योतिषाचार्य) ने कह दिया –

"यह बालक गृहस्थ ग्रहण न कर नैष्ठिक ब्रह्मचारी ही रहेगा, इसका प्रादुर्भाव जीव-जगत के निस्तार निमित्त ही हुआ है।"

वही हुआ, गुरु-शिष्य परिपाटी का निर्वाहन करते हुए शिक्षाध्ययन को तो गये किन्तु बहु अल्प काल में अध्ययन समापन भी हो गया।

"अल्पकाल विद्या बहु पायी"

गुरुजनों को गुरु बनने का श्रेय ही देना था अपने अध्ययन से। सर्वक्षेत्र कुशल इस प्रतिभा ने अपने गायन-वादन आदि ललित कलाओं से विस्मयान्वित कर दिया बड़े-बड़े संगीत-मार्तण्डों को। प्रयागराज को भी स्वल्पकाल ही यह सानिध्य सुलभ हो सका "तीर्थी कुर्वन्ति तीर्थानि" ऐसे अचिन्त्य शक्ति सम्पन्न असामान्य पुरुष का। अवतरणोद्देश्य की पूर्ति हेतु दो बार भागे जन्मभूमि छोड़कर ब्रजदेश की ओर किन्तु माँ की पकड़ अधिक मजबूत होने से सफल न हो सके। अब यह तृतीय प्रयास था, इन्द्रियातीत स्तर पर एक ऐसी प्रक्रिया सक्रिय हुई कि तृणतोड़नवत् एक झटके में सर्वत्याग कर पुनः गति अविराम हो गई ब्रज की ओर।

चित्रकूट के निर्जन अरण्यों में प्राण-परवाह का परित्याग कर परिभ्रमण किया, सूर्यवंशमणि प्रभु श्रीराम का यह वनवास स्थल पूज्यपाद का भी वनवास स्थान रहा। "स रक्षिता रक्षति यो हि गर्भे" इस भावना से निर्भीक घूमे उन हिंसक जीवों के आतंक संभावित भयानक वनों में।

आराध्य के दर्शन को तृषान्वित नयन, उपास्य को पाने के लिए लालसान्वित हृदय अब बार-बार पाद-पद्मों को श्रीधाम बरसाने के लिए ढकेलने लगा, बस पहुँच गए बरसाना। मार्ग में अन्तस् को झकझोर देने वाली अनेकानेक विलक्षण स्थितियों का सामना किया। मार्ग का असाधारण घटना संघटित वृत्त यद्यपि अत्यधिक रोचक, प्रेरक व पुष्कल है तथापि इस दिव्य जीवन की चर्चा स्वतन्त्र रूप से भिन्न ग्रन्थ के निर्माण में ही सम्भव है अतः यहाँ तो संक्षिप्त चर्चा ही है। बरसाने में आकर तन-मन-नयन आध्यात्मिक मार्गदर्शक के अन्वेषण में तत्पर हो गए। श्रीजी ने सहयोग किया एवं निरंतर राधारससुधा सिन्धु में अवस्थित, राधा के परिधान में सुरक्षित, गौरवर्णा की शुभ्रोज्ज्वल कान्ति से आलोकित-अलंकृत

युगल सौख्य में आलोडित, नाना पुराणनिगमागम के ज्ञाता, महावाणी जैसे निगूढ़ात्मक ग्रन्थ के प्राकट्यकर्ता "अनन्त श्री सम्पन्न श्री श्री प्रियाशरण जी महाराज" से शिष्यत्व स्वीकार किया।

ब्रज में भामिनी का जन्म स्थान बरसाना, बरसाने में भामिनी की निज कर निर्मित गहवर वाटिका "बीस कोस वृन्दाविपिन पुर वृषभानु उदार, तामें गहवर वाटिका जामें नित्य विहार" और उस गहवरवन में भी महासदाशया मानिनी का मन-भावन मान-स्थान श्री मानमंदिर ही मानद (बाबाश्री) को मनोनुकूल लगा। मानगढ़, ब्रह्माचलपर्वत की चार शिखरों में से एक महान शिखर है। उस समय तो यह बीहड़ स्थान दिन में भी अपनी विकरालता के कारण किसी को मंदिर प्रांगण में न आने देता। मंदिर का आंतरिक मूल स्थान चोरों को चोरी का माल छिपाने के लिए था। चौराग्रगण्य की उपासना में इन विभूति को भला चोरों से क्या भय?

भय को भगाकर भावना की – "तस्कराणां पतये नमः" – चोरों के सरदार को प्रणाम है, पाप-पंक के चोर को भी एवं रकम-बैंक के चोर को भी। ब्रजवासी चोर भी पूज्य हैं हमारे, इस भावना से भावित हो द्रोहार्हणों (द्रोह के योग्य) को भी कभी द्रोहदृष्टि से न देखा, अद्वेष्टा के जीवन्त स्वरुप जो ठहरे। फिर तो शनैः-शनैः विभूति की विद्यमत्ता ने स्थल को जाग्रत कर दिया, अध्यात्म की दिव्य सुवास से परिव्याप्त कर दिया।

जग-हित-निरत इस दिव्य जीवन ने असंख्यों को आत्मोन्नति के पथ पर आरूढ़ कर दिया एवं कर रहे हैं। श्रीमन् चैतन्यदेव के पश्चात् कलिमलदलनार्थ नामामृत की नदियाँ बहाने वाली एकमात्र विभूति के सतत् प्रयास से आज ३२ हजार से अधिक गाँवों में प्रभातफेरी के माध्यम से नाम निनादित हो रहा है। ब्रज के कृष्ण लीला सम्बंधित दिव्य वन, सरोवर, पर्वतों को सुरक्षित करने के

साथ-साथ सहस्रों वृक्ष लगाकर सुसज्जित भी किया । अधिक पुरानी बात नहीं है, आपको स्मरण करा दें, सन् २००९ में "श्रीराधारानी ब्रजयात्रा" के दौरान ब्रजयात्रियों को साथ लेकर स्वयं ही बैठ गये आमरण अनशन पर, इस संकल्प के साथ कि जब तक ब्रज-पर्वतों पर हो रहे खनन द्वारा आघात को सरकार रोक नहीं देगी, मुख में जल भी नहीं जायेगा । समस्त ब्रजयात्री भी निष्ठापूर्वक अनशन लिए हुए हरिनाम-संकीर्तन करने लगे और उस समय जो उद्दाम गति से नृत्य-गान हुआ, नाम के प्रति इस अटूट आस्था का ही परिणाम था कि १२ घंटे बाद ही विजयपत्र आ गया । दिव्य विभूति के अपूर्व तेज से साम्राज्य सत्ता भी नत हो गयी । गौवंश के रक्षार्थ गत् ६ वर्ष पूर्व माताजी गौशाला का बीजारोपण किया था, देखते ही देखते आज उस वट बीज ने विशाल तरु का रूप ले लिया, जिसके आतपत्र (छाया) में आज 35, 000 से अधिक गायों का मातृवत् पालन हो रहा है । संग्रह परिग्रह से सर्वथा परे रहने वाले इन महापुरुष की भगवन्नाम ही एकमात्र सरस सम्पत्ति है ।

यही करुणा करना करुणामयी मम अंत होय बरसाने में ।
पावन गह्वरवन कुञ्ज निकट रज में रज होय मिलूँ ब्रज में ॥

(बाबा श्री द्वारा रचित – ब्र.भा.मा. से संग्रहीत)

परम विरक्त होते हुए भी बड़े-बड़े कार्य संपादित किये इन ब्रज संस्कृति के एकमात्र संरक्षक, प्रवर्द्धक व उद्धारक ने । गत षष्टि (६०) वर्षों से ब्रज में क्षेत्रसन्यास (ब्रज के बाहर न जाने का प्रण) लिया एवं इस सुदृढ़ भावना से विराज रहे हैं । ब्रज, ब्रजेश व ब्रजवासी ही आपका सर्वस्व हैं । असंख्यों आपके सान्निध्य-सौभाग्य से सुरभित हुये, आपके विषय में जिनके विशेष अनुभव हैं, विलक्षण अनुभूतियाँ हैं, विविध विचार हैं, विपुल भाव साम्राज्य है, विशद अनुशीलन हैं, इस लोकोत्तर व्यक्तित्व ने विमुग्ध कर दिया है विवेकियों का हृदय । वस्तुतः कृष्णकृपालब्ध पुमान् को ही गम्य हो

सकता है यह व्यक्तित्व। रसोदधि के जिस अतल-तल में आपका सहज प्रवेश है, यह अतिशयोक्ति नहीं कि रस ज्ञाताओं का हृदय भी उस तल से अस्पृष्ट ही रह गया।

आपकी आंतरिक स्थिति क्या है, यह बाहर की सहजता, सरलता को देखते हुए सर्वथा अगम्य है। आपका अन्तरंग लीलानंद, सुगुप्त भावोत्थान, युगल मिलन का सौख्य इन गहन भाव-दशाओं का अनुमान आपके सृजित साहित्य के पठन से ही संभव है। आपकी अनुपम कृतियाँ – श्री रसिया रासेश्वरी, स्वर वंशी के शब्द नूपुर के, ब्रजभावमालिका, भक्तद्वय चरित्र इत्यादि हृदयद्रावी भावों से भावित कृतियाँ हैं।

आपका त्रैकालिक सत्संग अनवरत चलता ही रहता है। साधक-साधु-सिद्ध सबके लिए सम्बल हैं आपके त्रैकालिक रसार्द्रवचन। दैन्य की सुरभि से सुवासित अद्भुत असमोर्ध्व रस का प्रोज्ज्वल पुंज है यह दिव्य रहनी, जो अनेकानेक पावन आध्यात्मास्वाद के लोभी मधुपों का आकर्षण केंद्र बन गयी। सैकड़ों ने छोड़ दिए घर-द्वार और अद्यावधि शरणागत हैं। ऐसा महिमान्वित-सौरभान्वित वृत्त विस्मयान्वित कर देने वाला स्वाभाविक है।

रस-सिद्ध-संतों की परम्परा इस ब्रजभूमि पर कभी विच्छिन्न नहीं हो पायी। श्रीजी की यह गह्वर वाटिका जो कभी पुष्पविहीन नहीं होती, शीत हो या ग्रीष्म, पतझड़ हो या पावस, एक न एक पुष्प तो आराध्य के आराधन हेतु प्रस्फुटित ही रहता है। आज भी इस अजरामर, सुन्दरतम, शुचितम, महत्तम, पुष्प (बाबाश्री) का जग स्वस्तिवाचन कर रहा है। आपके अपरिसीम उपकारों के लिए हमारा अनवरत वंदन, अनुक्षण प्रणति भी न्यून है।

प्रार्थना है अवतरित प्रीति-प्रतिमा विभूति से कि निज पादाम्बुजों का अनुगमन करने की शक्ति हम सबको प्रदान करें।

सर्वत्याग की शिखर – गोपीजन

भगवान् भी त्याग के सामने झुकते हैं। श्रीमद्भागवत में भगवान् श्रीकृष्ण ने गोपियों से कहा –

न पारयेऽहं निरवद्यसंयुजां
स्वसाधुकृत्यं विबुधायुषापि वः ।
या माभजन् दुर्जरगेहश्रृङ्खलाः
संवृश्च्य तद् वः प्रतियातु साधुना ॥

(भा. १०/३२/२२)

हे गोपियो ! आसक्तियों की श्रृंखला (जंजीर) बड़ी दुर्जर है, जिसे काटना कठिन है, अहंता-ममता की बेड़ी कभी समाप्त नहीं होती है, उस दुर्जर श्रृंखला को तुम लोगों ने अच्छी प्रकार से काटा और अनन्तकाल तक के लिए काट दिया। इसलिए मैं तुम्हारा ऋण चुकाने में समर्थ नहीं हूँ। सर्वशक्तिमान होने पर भी मेरी सामर्थ्य नहीं है कि मैं तुम्हारे ऋण को चुका सकूँ। देवताओं की उम्र लेकर, ब्रह्मा की दो परार्ध की आयु धारण करके भी मैं तुम्हारे ऋण को नहीं चुका सकता हूँ; तुम स्वयं मुझे उऋण कर दो अन्यथा मैं तो सर्वदा तुम्हारा ऋणी रहूँगा।

गोपियों का जो त्याग था, उसके कारण भगवान् के मुख से ये शब्द निकले जो आज तक कभी नहीं निकले थे। जितना भी भक्ति-साहित्य मैंने अध्ययन किया, उसमें भक्तों के प्रति भगवान् के ऋणी होने का प्रसंग दो स्थानों पर ही देखा। एक तो श्रीरामचरितमानस में हनुमान जी के प्रति श्रीरामजी की कृतज्ञता तथा दूसरा उदाहरण श्रीमद्भागवत में गोपियों के प्रति श्रीकृष्ण की कृतज्ञता।

रामायण में भगवान् राम ने हनुमान जी से कहा –

प्रति उपकार करौं का तोरा ।
सनमुख होइ न सकत मन मोरा ॥

(रा.च.मा.सुन्दर ३२)

"हे हनुमान ! आपने जो कुछ किया, उसके बदले में मैं कुछ नहीं कर सकता।" इससे भी अधिक सशक्त वचन हैं भगवान् श्रीकृष्ण का गोपियों के प्रति श्रीमद्भागवत में। भगवान् कहते हैं गोपियों से – **'स्वसाधुकृत्यं विबुधायुषापि वः'** मैं दिन-रात तुम्हारे लिए अच्छे कार्य करता रहूँ, विबुध का अर्थ है – ब्रह्मा की द्विपरार्ध की आयु पर्यन्त, तब भी तुम्हारा ऋण मैं नहीं चुका सकता। क्यों? क्योंकि तुमने दुर्जर गेह-श्रृंखला को सदा के लिए काट डाला।

गोपियों जैसा त्याग संसार में कहीं नहीं है। मनुष्य कहीं जाकर धन तो चढ़ा देगा लेकिन धन की आसक्ति को नहीं चढ़ा सकेगा। घर तो छोड़ देगा लेकिन घर में जो आसक्ति है उसे नहीं छोड़ पाता है, बहुत से लोग पैसा नहीं छूते, धन का स्पर्श नहीं करते, धन-सम्पत्ति का तो त्याग कर देते हैं परन्तु उसकी जो आसक्ति है उसे नहीं छोड़ पाते हैं | सब कुछ आसान है परन्तु आसक्ति का त्याग कठिन है।

श्रीमद्भागवत में जड़भरत जी की महिमा का वर्णन शुकदेव जी ने क्यों किया? उसका कारण है –

यो दुस्त्यजान्दारसुतान् सुहृद्राज्यं हृदिस्पृशः ।
जहौ युवैव मलवदुत्तमश्लोकलालसः ॥
यो दुस्त्यजान् क्षितिसुतस्वजनार्थदारान्
प्रार्थ्यां श्रियं सुरवरैः सदयावलोकाम् ।
नैच्छन्नृपस्तदुचितं महतां मधुद्विट्
सेवानुरक्तमनसामभवोऽपि फल्गुः ॥

(भा. ५/१४/४३,४४)

हम लोग क्या त्याग कर सकते हैं? आसक्ति दुस्त्यज है अर्थात् छोड़ी नहीं जा सकती। त्याग आसक्ति का होता है, धन का त्याग ही त्याग नहीं है।

जड़भरत जी ने युवावस्था में ही पृथ्वी का त्याग किया, पुत्र-पुत्री का त्याग किया, स्वजन-सम्बन्धियों का त्याग किया, स्त्री तथा धन का त्याग किया, जबकि इन सबका त्याग करना दुस्त्यज है। हम लोग साधु बन जाते हैं, फिर भी धन का संग्रह करते हैं और अपने आपको त्यागी बताते हैं। झूठ है यह, शत-प्रतिशत झूठ है क्योंकि दुस्त्यज को नहीं छोड़ पाये और त्यागी बनते हैं। जमीन-जायदाद का त्याग दुस्त्यज है, बेटा-बेटी, कुटुम्ब, धन, स्त्री, विषय-भोग आदि इन सबका त्याग दुस्त्यज है और इससे भी कठिन है देवलक्ष्मी का त्याग। जड़भरत जी के पास ऐसी लक्ष्मी थी जो देवताओं के पास भी नहीं थी। यह देवलक्ष्मी भक्ति के प्रभाव से इसी पृथ्वी पर प्राप्त हो जाती है। देवदुर्लभ-भोगों की प्राप्ति इसी मनुष्य-योनि में हो जाती है, इसके अनेकों प्रमाण हैं, पाण्डवों को भी देवदुर्लभ-लक्ष्मी प्राप्त थी।

किं ते कामाः सुरस्पार्हा मुकुन्दमनसो द्विजाः ।
अधिजह्नुर्मुदं राज्ञः क्षुधितस्य यथेतरे ॥

(भा. १/१२/६)

युधिष्ठिर जी को ऐसे भोग-पदार्थ प्राप्त थे, जिनकी कामना देवता भी किया करते हैं; क्यों प्राप्त थे? क्योंकि उनका मन भगवान् को समर्पित था। इस तरह भक्ति के प्रभाव से युधिष्ठिर को देवदुर्लभ भोग-पदार्थ प्राप्त थे। जो सुख देवताओं को दुर्लभ है, वह हमको इसी मनुष्य-योनि में प्राप्त हो सकता है, अगर मन हमारा भगवान् में है। लेकिन हमारा मन भगवान् में कहाँ है? हमारा मन तो रुपया-पैसा, लड्डू-पेड़ा और भोगों में है। इसी श्लोक में शुकदेव जी आगे कहते हैं कि क्या देवदुर्लभ भोग-पदार्थ सम्राट युधिष्ठिर को आनन्दित कर सकते थे? नहीं। जैसे किसी भूखे व्यक्ति का

अत्यधिक भूख से प्राण निकल रहा हो और जाकर उसे सोने का हार पहना दो तो क्या सोना पाकर वह सन्तुष्ट होगा? कदापि नहीं होगा।

हमने अपने विद्यार्थी-जीवन में एक कहानी पढ़ी थी कि एक राजा ने ईश्वर से वरदान माँगा कि मैं जिस वस्तु का स्पर्श करूँ, वह सोना बन जाये, उसे वरदान मिला। फलस्वरूप वह लड्डू छुए तो लड्डू सोना बन जाये, कोई भी चीज पकड़ता तो वह सोना बन जाती थी, अतः वह राजा भूखा ही मर गया; उसी प्रकार जिस मनुष्य के भूख के कारण प्राण निकल रहे हों, उसे संसार का कौन-सा भोग-पदार्थ सुखी कर सकता है? इसी प्रकार भगवान् का भक्त होता है, उसको उर्वशी भी प्रसन्न नहीं कर सकती। जब अर्जुन के पास उर्वशी कामातुर होकर पहुँची तो उन्होंने उसे लौटा दिया, इसे कहते हैं भक्त। हम जैसे लोग भक्त कैसे बन सकते हैं? हम लोग तो गधी की लीद पर मर जायेंगे। ***कितनी भी सुन्दर स्त्री है, आखिर उसके शरीर से निकलता तो है मल-मूत्र ही और उस मल-मूत्र पर मरने वाले अर्थात् मल-मूत्र की पिण्डी स्त्री से भोग-सुख चाहने वाले क्या भक्त हो सकते हैं?***

इन्द्र तक ने त्याग का लोहा मान लिया, उन्होंने वृत्रासुर से कहा था –

यस्य भक्तिर्भगवति हरौ निःश्रेयसेश्वरे ।
विक्रीडतोऽमृताम्भोधौ किं क्षुद्रैः खातकोदकैः ॥

(भा. ६/१२/२२)

जिसकी भगवान् में भक्ति है, वह अमृत के समुद्र में विहार कर रहा है, उसे स्त्री के क्षुद्र (नीच) गड्ढे के पानी अर्थात् स्त्री के तुच्छ योनिद्वार से स्रवित गन्दे कामवारि से क्या प्रयोजन है? चाहे उर्वशी ही क्यों न हो? उसका भी गड्ढा तो नीच ही है। माया ने सारे

संसार को ठग लिया है। चाहे मनुष्य हो, पशु-पक्षी कोई भी हों सब नीच गड्ढे के पानी में मर रहे हैं।

अतः (भागवत-५/१४/४४ में) भरतजी के लिए लिखा है कि देवता भी जिस लक्ष्मी को चाहते हैं, वह लक्ष्मी भरतजी की ओर देख रही है कि ये हमें अपना लें, चाह रही है कि हमारा वरण कर लें लेकिन भक्त भरतजी ने उसकी इच्छा भी नहीं की। यह ठीक किया उन्होंने क्योंकि ***जिसका भगवान् की सेवा में अनुराग है, वह मोक्ष तक को तुच्छ मानता है फिर ये देवलक्ष्मी तो चीज ही क्या है?*** इसलिए त्याग के कारण भगवान् दबते हैं, भक्त का लोहा मानते हैं।

भरतजी के पास विशाल भूमण्डल का साम्राज्य था, देवता भी जिनकी स्पृहा करते थे, देवलोक की अप्सराओं से भी सुन्दर स्त्रियाँ थीं लेकिन उन्होंने इन सबको युवावस्थामें ही त्याग दिया, कैसे त्याग किया? मलवत्। जैसे लोग जंगल में शौच करने जाते हैं और वहाँ से लौटकर कोई नहीं सोचता कि हम जिस मल को छोड़ आये हैं उसका क्या हुआ होगा? यानी जो कुछ त्याग किया गया फिर कभी उसकी याद ही न आवे। वैसे ही उन्होंने युवावस्था में ही देवदुर्लभ भोगपदार्थों का मलवत् त्याग कर दिया। युवावस्था में ही क्यों कर दिया? **'उत्तमश्लोकलालसः'** उत्तमश्लोक भगवान् को प्राप्त करने की लालसा से।

इसलिए सच्चा त्याग चाहिए, आजकल हम लोगों में त्याग नहीं है, सम्मान के भूखे हैं, प्रतिष्ठा के भूखे हैं। हमारे पास कई प्रभावशाली लोग आते हैं, वे कहते हैं कि हम रसिक हैं, क्यों? क्योंकि हम रस के पद गाते हैं, जबकि दिखाई यह पड़ता है कि ये रसिक नहीं हैं क्योंकि उनके मन में मान-सम्मान की अभिलाषा है। 'हम रसिक हैं' यह कहना ही गलत है, यह कहना ही दिखाता है कि हम मान-सम्मान के भूखे हैं, यह खोखलापन है।

नीतिशास्त्र में कहा गया है कि क्या कभी किसी ने सूर्य को पैदल चलते देखा है अर्थात् नहीं देखा है, सूर्य वही है जो आकाश में चलता है। हवा वही है जो हमेशा चलती रहती है, जिस दिन वह रुक जायेगी, उस दिन वह हवा नहीं रहेगी। शेषनाग सदा ही पृथ्वी को धारण करते हैं, ऐसा नहीं कि एक मिनट को आराम कर लें, अगर आराम करते हैं तो फिर वह शेषजी नहीं हैं। इसी प्रकार ***धीर कौन है? जो अपनी प्रशंसा स्वयं नहीं करता है***। हर मनुष्य अपनी प्रशंसा करता है कि हमारे त्याग को देखो, हमारे पाण्डित्य को देखो, हमारी भक्ति को देखो, हमारी रसिकता को देखो; ये शब्द ही बता रहे हैं कि तुम धीर नहीं हो, तुम पाखंडी हो, दाम्भिक हो। गीता में भगवान् ने आसुरी सम्पदा वाले पुरुष के लक्षण बताये हैं –

दम्भो दर्पोऽभिमानश्च क्रोधः पारुष्यमेव च ।
अज्ञानं चाभिजातस्य पार्थ सम्पदमासुरीम् ॥

(गी. १६/४)

शंकराचार्य जी ने इस श्लोक में 'दम्भ' शब्द का अर्थ किया है – 'धर्मध्वजी' जो धर्म की ध्वजा फहराते हैं और डींग हाँकते हैं कि देखो, हमारे यहाँ यह धर्म है, हमारे यहाँ यह रस है, हमारे यहाँ यह भक्ति है, वे सब धर्मध्वजी हैं। इसमें सभी धार्मिक लोग आ गये। लोग धर्म पीछे करते हैं पहले उसकी ध्वजा फहरा देते हैं और इसका परिणाम क्या है? केवल पाप। 'दम्भ' केवल पाप है, शुद्ध पाप है और वही हम लोग दिन-रात करते हैं – हम इतने बड़े भक्त हैं; हम इतने बड़े विरक्त हैं; हम इतने बड़े त्यागी हैं। अरे, ठीक है तुम सब कुछ हो परन्तु दिखा क्यों रहे हो? दम्भ किया और सब नष्ट हो गया। एक तो भजन होता नहीं है और थोड़ा बहुत बन भी जाए तो हमलोग दिखाकर उसको नष्ट कर देते हैं। इस तरह भजन के नाम पर हम लोग केवल पाप करते हैं। भक्ति करेंगे तो उसे दिखायेंगे, चार अक्षर पढ़ जायेंगे तो उसे दिखायेंगे, कुछ कीर्तन कर लिया तो उसे दिखायेंगे, कुछ दान दिया तो उसका प्रदर्शन करेंगे

कि हम इतनी सेवा कर रहे हैं। हर जगह पाखण्ड घुसा हुआ है। कहीं भी सच्चा त्याग नहीं है। त्याग ऐसा चाहिए जैसा कि जड़भरत जी के बारे में कहा गया है – जैसे मलत्याग के बाद किसी को मल की याद ही नहीं आती है कि हमारे द्वारा छोड़े हुए मल का क्या हुआ होगा? सूख गया कि वैसा ही पड़ा है; इसको कहते हैं त्याग।

भगवान् ने गीता में कहा – **'त्यागाच्छान्तिरनन्तरम्'** अगर सच्चा त्याग आ जाए तो अनन्त शान्ति की प्राप्ति हो जायेगी।

सतत्-चिन्तन

मनुष्य जब खाली बैठता है तब उसे काम, क्रोध, लोभ, मोहादि सभी शत्रु सताते हैं। एक कहावत है –

An empty mind is a devil's workshop.

(जब मनुष्य खाली रहता है तो उसका मन शैतान का कारखाना बन जाता है।)

उसी का पतन शीघ्र होता है जो अपने मन को खाली रखता है। खाली घरों में भूत-प्रेतों का निवास रहता है। लोग कहते हैं कि भगवान् से मिलना बड़ा कठिन है, कठिन तब है जब हम भगवान् से दूर रहते हैं। मन भगवान् में नहीं रहता तब कठिन है। गीता में भगवान् ने प्रतिज्ञा की है कि मेरा मिलना बड़ा आसान है –

अनन्यचेताः सततं यो मां स्मरति नित्यशः ।
तस्याहं सुलभः पार्थ नित्ययुक्तस्य योगिनः ॥

(गी. ८/१४)

यह भगवान् की वाणी है, एक तरह से प्रतिज्ञा-वाक्य है। तुम्हारा मन कहीं इधर-उधर न जाए। जो मेरा नित्य प्रत्येक क्षण स्मरण करता है, उसके लिए मैं सुलभ हूँ, बहुत जल्दी मिल जाऊँगा। अनन्यचित्त से मेरा नित्य स्मरण करो, नित्ययुक्त हो जाओ, फिर मेरा मिलना बहुत आसान है। जब मनुष्य निरन्तर लगा रहता है तो भगवान् उसके हृदय में आ जाते हैं।

आज सारे समाज में राग-द्वेष क्यों है? क्योंकि हमलोगों का खाली दिमाग रहता है इसलिए या तो किसी की निन्दा करते हैं या किसी की स्तुति और इसी कारण काम-क्रोधादि विकारों से मन दूषित रहता है; यही सब झगड़े लगे रहते हैं, जिससे भगवत्तेज नहीं आता है। राग-द्वेष से ही हम लोग घिरे हुए हैं, विद्वान् बन गए, साधु

बन गये लेकिन अभी तक राग-द्वेष नहीं गया। भगवान् ने गीता में कहा –

रागद्वेषवियुक्तैस्तु विषयानीन्द्रियैश्चरन् ।
आत्मवश्यैर्विधेयात्मा प्रसादमधिगच्छति ॥
प्रसादे सर्वदुःखानां हानिरस्योपजायते ।
प्रसन्नचेतसो ह्याशु बुद्धिः पर्यवतिष्ठते ॥

(गी. २/६४,६५)

जब तुम्हारा मन निर्मल हो जाएगा, तब सभी अनन्त दुःख जड़ से चले जायेंगे, तुम्हारी बुद्धि स्थित हो जाएगी। अगर तेजस्वी बनना है, माया को जीतना है तो कपड़े बदल लेने से कुछ नहीं होगा, हर समय मन को भगवान् में लगाये रखो। क्या कारण है कि गोपियों की चरणरज-प्राप्ति के लिए ब्रह्मा, शंकर आदि तरसते हैं? क्योंकि गोपियाँ एक क्षण भी खाली नहीं रहती थीं, उनके पास तो इतना काम था कि आजकल के लोग तो कर ही नहीं सकते।

या दोहनेऽवहनने मथनोपलेप,
प्रेङ्खेङ्खनार्भरुदितोक्षणमार्जनादौ ।
गायन्ति चैनमनुरक्तधियोऽश्रुकण्ठ्यो,
धन्या व्रजस्त्रिय उरुक्रमचित्तयानाः ॥

(भा. १०/४४/१५)

गोपियाँ गाय दुहती थीं, धान कूटती थीं। अब तो बना-बनाया चावल मिल जाता है, आटा मिल जाता है। पहले चक्कियाँ नहीं थीं, गोपियाँ जाँता (चक्की) में आटा पीसती थीं। घर को लीपती थीं, पुराने समय में कच्चे घर थे, सीमेंट के मकान नहीं थे, इसलिए वह घरों पर मिट्टी का लेपन करती थीं। आजकल कोई उपलेप नहीं करता है, सब पक्के मकान बन गए हैं। आज का गरीब से गरीब आदमी भी सीमेंट के मकान में रहता है। गोपियों के पास इतना समय नहीं था कि बच्चे को गोद में खिलाएँ क्योंकि बहुत काम था – गोबर थापना, बिटौरा बनाना, बुहारी (झाड़ू) लगाना आदि।

इसलिए गोपियाँ बच्चा नहीं खिला सकती थीं, बच्चा रो रहा है तो पालने में डाल दिया। इस तरह इतना काम करते हुए भी गोपियाँ हर समय कृष्ण-गुणगान करती रहती थीं। शुकदेव जी ने प्रशंसा की है कि ये गोपियाँ धन्य हैं जिनका प्रत्येक क्षण भगवान् में लगा हुआ है। इसलिए उनकी चरण रज प्राप्ति के लिए ब्रह्मा, शिवादि भी लालायित रहते हैं। अतः हर व्यक्ति को चाहिए कि वह अपने मन को खाली न रखे। मन खाली रहा तो शीघ्र ही तुम्हारा पतन हो जाएगा, तुम्हें काम, क्रोध, लोभादि सभी विकार सताएँगे।

भयं प्रमत्तस्य वनेश्वपि स्याद्
यतः स आस्ते सहषट्सपत्नः ।
जितेन्द्रियस्यात्मरतेर्बुधस्य गृहाश्रमः
किं नु करोत्यवद्यम् ॥

(भा. ५/१/१७)

अगर प्रमाद है तो तुम साधु बन जाओ, जंगल में चले जाओ फिर भी पतन होने का डर है, तुम कुछ नहीं प्राप्त कर सकते हो। साधु बनने पर भी तुम्हारे मन में छः दोष रूपी भूत काम, क्रोध, मद, लोभ, मोहादि घूमेंगे। अतः भगवान् में जिसकी रति है, जो जितेन्द्रिय है उसका गृहस्थाश्रम भी क्या नुकसान कर सकता है? स्त्री बेचारी क्या नुकसान करेगी? जिसका मन खाली है, उसी खाली मन में ये भूत घूमते हैं। जो चिन्तन करता है कि मरने के बाद क्या होगा? हम कहाँ जाएँगे? वही योगी है, वह कभी मोह को प्राप्त नहीं होता है।

नैते सृती पार्थ जानन्योगी मुह्यति कश्चन ।
तस्मात्सर्वेषु कालेषु योगयुक्तो भवार्जुन ॥

(गी. ८/२७)

क्योंकि उसको चिंता है कि मरने के बाद न माँ काम आएगी, न बाप काम आएगा, न पति काम आएगा, न स्त्री काम आएगी।

'प्रान लिये जम जात मूढमति, देखत जननी तात ।'

माँ-बाप के सामने बच्चा मर रहा है, माँ-बाप बचा नहीं सकते। पति के सामने स्त्री मर रही है, पति बचा नहीं सकता। श्रीमद्भागवत् में लक्ष्मी जी ने कहा है कि पति तो एक ही है –

स वै पतिः स्यादकुतोभयः स्वयं
समन्ततः पाति भयातुरं जनम् ।
स एक एवेतरथा मिथो भयं
नैवात्मलाभादधि मन्यते परम् ॥

(भा. ५/१८/२०)

जो चारों ओर से रक्षा करता है वह है पति। अब जो स्वयं काल के मुख में पड़ा हुआ है, वह बेचारा दूसरे को क्या बचाएगा? सच्चा पति तो वह है जो 'अकुतोभय' है, जिसको कहीं भय नहीं है, न काल का, न गुणों का, न बीमारियों का, वह पति हो सकता है। संसार का कौन-सा पति है, जो काल से बचायेगा? सब पति भक्षक हैं, भोगी हैं। हर आदमी भय से घिरा हुआ है, पता नहीं कब काल आ जाये? कब बीमारी आ जाये? कब क्या हो जाए? चारों ओर से संसार में भय है, केवल अभयप्रद भगवान् हैं। इसलिए भगवान् ही परमपति हैं, सच्चे रक्षक हैं। भगवान् चाहते हैं कि तुम हमारे पास आ जाओ, क्यों मरते हो संसार में? क्यों फँसते हो? काल के मुँह में क्यों जाते हो? मेरी प्राप्ति करके परमात्म-लाभ प्राप्त कर लो।

भागवत-भक्ति

भक्त सुखी रहते हैं तो भगवान् भी सुखी रहते हैं। यह भगवान् का स्वभाव है कि किसी भी तरह भक्तों को सुख मिले।

सुनु सुरेस उपदेसु हमारा ।
रामहि सेवकु परम पिआरा ॥
मानत सुखु सेवक सेवकाईं ।
सेवक बैर बैरु अधिकाईं ॥

(रा.च.मा.अयो. २१९)

'भक्तों को सुख मिले' यह बात जिसके जीवन में आ गयी, उसको भगवान् मिल गये। भक्त की सेवा करोगे तो भगवान् सुखी हो जाएँगे। अगर सेवक (भक्त) से बैर करोगे तो भगवान् तुमसे हजार गुना बैर करेंगे। फिर चाहे तुम कितना ही भजन कर लो, पाठ-पूजा कर लो, तप कर लो, कुछ नहीं होगा। इसलिए कोई भक्त कष्ट में है तो उसको सुखी करने का प्रयत्न करो, इससे तुम पर भगवान् बहुत जल्दी प्रसन्न होंगे।

एक कथा आती है – हनुमान जी के दो भक्त रास्ते में जा रहे थे, एक भक्त ने देखा कि हनुमान जी की मूर्ति बाहर खुले मैदान में पड़ी है, कोई छाया नहीं, मन्दिर नहीं; तब उसने सोचा कि हनुमान जी को धूप लगती होगी, छाया नहीं है, उसने एक छप्पर बनाकर ऊपर टांग दिया। तब तक दूसरा भक्त आया, उसने कहा – "अरे, यह छप्पर किसने बनाया? " लोगों ने उस भक्त का नाम बताया जिसने छप्पर बनाया था।

दूसरे भक्त ने कहा – 'छप्पर में आग बड़ी जल्दी पकड़ती है, इससे हनुमान जी आग में जलेंगे नहीं? छप्पर क्यों बनाया?'

दोनों भक्तों में बहस हो गयी।

पहला भक्त – हनुमान जी ने लंका जलायी, तो उनको आग क्या जलाएगी?

दूसरा भक्त – लंका तो जलायी थी भगवान् की सेवा के लिए। तुम कैसे भक्त हो? हनुमान जी को आग में जलाओगे।

दोनों में कलह, बहस हो गयी, इतना कलह हो गया कि दूसरा भक्त बोला कि मैं छप्पर को हटा दूँगा।

पहला भक्त – नहीं, हम छप्पर नहीं हटाने देंगे।

उनके झगड़े को देखकर हनुमान जी ने सोचा कि दोनों ही भक्त हैं और दोनों में समझ नहीं है, हमसे बैर कर रहे हैं, ये बन तो रहे हैं हमारे भक्त लेकिन हमसे बैर कर रहे हैं क्योंकि आपस में दोनों का बैर है, इसका मुख्य कारण छप्पर है तो हनुमान जी स्वयं प्रगट हो गये और बोले – तुम दोनों क्यों विवाद (बहस) करते हो?

दूसरा भक्त बोला – 'महाराज, इसने छप्पर बना दिया, छप्पर में आग लगेगी तो आपको कष्ट नहीं होगा; ऊपर से यह अकड़ता और कहता है कि हनुमान जी ने लंका जलायी, उन्हें आग कैसे जला सकती है? इसलिए मैंने कहा कि मैं छप्पर को हटा दूँगा लेकिन यह अड़ा हुआ है कि मैं छप्पर नहीं हटाने दूँगा।'

हनुमान जी बोले कि तुम लोग जो आपस में लड़ रहे हो, इससे तुम्हारे द्वारा मुझसे बैर हो रहा है। तुम दोनों हमारे भक्त हो। तुम छप्पर मत तोड़ो। एक चबूतरा अलग बना दो, जब आग लगेगी तो मैं चबूतरे पर चला जाऊँगा। इसने छप्पर को बनाया है तो छप्पर को बना रहने दो। झगड़ा खत्म हो गया।

झगड़ा किसी छोटी-सी बात पर होता है। भक्त आपस में लड़ते हैं तो भगवान् से बैर होता है और आपस में प्रेम से रहते हैं तो भगवान् प्रसन्न होते हैं। अगर हमारा भक्तों में प्रेम नहीं है तो भक्ति

कभी नहीं मिलेगी, चाहे जन्म भर माला फेरो। छः तरह का भक्तापराध होता है –

हन्ति निन्दति वै द्वेष्टि वैष्णवान्नाभिनन्दति ।
क्रुद्धते याति नो हर्षं दर्शने पतनानि षट् ॥

मारना, निंदा करना, द्वेष करना, भक्तों का स्वागत न करना, क्रोध करना और भक्तों को देखकर प्रसन्न नहीं होना, ये छः प्रकार का अपराध होता है।

भगवान् का भक्त आ गया तो उसको देखकर खुश हो जाना चाहिए, ये नहीं कि कोई भक्त आया और उसको देखकर हम नाक-भौंह सिकोड़ रहे हैं, ये राक्षसों के धर्म हैं। ये अक्सर हम लोगों में होता है।

तुलसी सीतानाथ सों जो न भयो अनुराग ।
तौ न करैगो काम कछु तप, तीरथ, बैराग ॥

भगवान् के भक्तों में अगर प्रेम नहीं है तो वैराग्य ले लिया, साधु बन गये, बाबाजी बन गये, घर छोड़ दिया, तीर्थों में रहने लगे लेकिन वह सब बेकार है। यदि धनुष में डोर नहीं है तो तीर चलाओगे, कैसे चलेगा? विषयों से भागकर साधु बन गये, सब बेकार है। बहुत से लोग साधु बनकर बड़ी तपस्या करते हैं, खड़ेश्वरी बन जाते हैं, खड़े रहते हैं। ये लोग एक झूला डाल लेते हैं, हाथ से सहारा लेने के लिए, नहीं तो खड़े-खड़े पैर में सूजन आ जाती है। एक खड़ेश्वरी साधु थे, इन खड़ेश्वरी महाराज के झूले के पास कोई पहुँच जाता था, तो बड़े नाराज होते थे, फटकार देते थे – चल हट। इस तरह तो साधु बनना बेकार गया। भक्तों को देखकर खुश नहीं हो रहे हो तो भगवान् का प्रेम नहीं मिलेगा।

अरे, भक्तों से प्रेम करना सीखो, भक्तों से प्रेम नहीं करोगे तो तुम्हारा सारा भजन नष्ट हो जाएगा। भक्तों से बैर करोगे, उनको देखकर खुश नहीं होगे तो यह शास्त्र का वचन है कि भक्तापराध लग

जाएगा और तुम्हारा सारा भजन खत्म हो जाएगा। इसलिए भक्तों से प्रेम करना सीखो।

राम भगत प्रिय लागहिं जेही ।
तेहि उर बसहु सहित बैदेही ॥

(रा.च.मा.अयो. १३१)

जिसको भक्तजन प्यारे लगते हैं, उसके हृदय में भगवान् बिना कहे आ जाते हैं, भजन करने की जरूरत नहीं है और यदि भक्तों से प्रेम नहीं है तो तुम्हारा जप, तप, वैराग्य आदि करना सब चूल्हे में चला गया और यदि सचमुच भगवान् और भक्तों में प्रेम है तो मृत्यु को जीत लोगे। भगवान् ने गीता में कहा –

'वासुदेवः सर्वमिति स महात्मा सुदुर्लभः ।'

(गी. ७/१९)

अर्जुन ! सर्वत्र भगवद्बुद्धि रखने वाला महात्मा दुर्लभ नहीं, अत्यन्त दुर्लभ है। 'सुदुर्लभ' अर्थात् मिलेगा ही नहीं, सारी दुनिया खोज आओ। सब एक-दूसरे से चिढ़ने वाले ही मिलेंगे। रामदास, श्यामदास को देखकर मुँह फुला लेता है और श्यामदास, रामदास को देखकर, सभी जगह यही मिलता है।

एक-दूसरे को देखकर प्रसन्न होने वाला कोई नहीं है। जबकि सच्चा भजन यही है सबको देखकर खुश हो जाओ। भगवान् ने गीता में कहा कि उदार व्यक्ति ही भजन कर सकता है। उदारता क्या है? दूसरे की कमी को ढक देना। उदार व्यक्ति ही ऐसा महात्मा बन सकता है, जो किसी के दोष को न देखे।

ऐसा उदार बनने में करोड़ों जन्म लग जायेंगे। दुनिया में ढूँढ़ आओ, ऐसा महात्मा मिलना दुर्लभ नहीं, असम्भव है। जितने लोग मिलेंगे भेद दृष्टि वाले मिलेंगे।

रामदास कहता है कि कृष्णदास के पास मत जाना, कृष्णदास कहता है कि रामदास मूर्ख है, यही सब मिलता है दुनिया में।

इसलिए सभी प्राणियों में भगवद्भाव रखना चाहिए, विशेषकर भक्तों में तो अवश्य ही रखना चाहिए।

हरि भक्तन सों गरब न करिबो

परमार्थ पथ बड़ा ही टेढ़ा है, सबसे पहले वेदों में यही उद्घोष किया गया –

उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य वरान्निबोधत ।
क्षुरस्य धारा निशिता दुरत्यया दुर्गं पथस्तत्कवयो वदन्ति ॥

(कठो. १/३/१४)

उठो जागो ! मन के अनुसार मत चलो, श्रेष्ठ पुरुषों के पास जाकर ज्ञान प्राप्त करो। क्यों जायें? क्योंकि परमार्थ का रास्ता बड़ा कठिन है। छुरे की तीक्ष्ण (नुकीली) धार पर पैर रखकर चलना पड़ता है क्योंकि रास्ता वही है, उस रास्ते से तुम अलग नहीं जा सकते। अब यहाँ छुरे की धार क्या है? छुरे की धार ये है कि साधक भक्तापराध से बच जाए, नहीं तो आज सारा समाज इसी अपराध के कारण नष्ट हो रहा है। साम्प्रदायिक द्वेष में हम लोग भक्तापराध करते हैं। भक्त, भक्त से प्रेम नहीं करता, यह भक्तापराध है। प्रेम न करना भी अपराध है। अगर ये बात किसी को समझाओ तो कहते हैं कि हम भक्तों से द्वेष नहीं करते। द्वेष नहीं करते यह तो अच्छी बात है लेकिन 'भक्त से प्रेम न करना' ये भी अपराध है। भक्तों का प्रसन्न मुख से अभिनन्दन नहीं करना, यह अपराध है। इसीलिए छुरे की धार पर चलना है। भजन चाहे कम करो परन्तु भक्तापराध से बचो। भक्त, भक्त से प्रेम रखे। हम लोग क्या भजन करेंगे, जब आपस में प्रेम नहीं है। भगवान् से बड़ा भगवान् का भक्त है, **"राम ते अधिक राम कर दासा ॥"** लेकिन यह बात क्रिया में नहीं आती। आज सारा वैष्णव समाज इसी में जल रहा है।

हम लोग भजन करते हैं लेकिन भगवान् की क्रोधाग्नि से जलते रहते हैं। लोग सबेरे से शाम तक बहुत माला जपते हैं लेकिन वही कार्य करते हैं जिससे भगवान् की क्रोधाग्नि हमें जला दे।

इसीलिए वेदों में कहा गया है – अरे भाई ! छुरे की धार पर चलना है। सँभल कर नहीं चलोगे तो मर जाओगे। छुरे की धार क्या है? भक्तापराध। भक्तापराध क्यों होता है ? मद के कारण; मद कैसा? हम बहुत पढ़ गये हैं, हमें बहुत से शास्त्रों का ज्ञान है, धन-सम्पत्ति का मद, उच्च कुल का मद, तपस्या आदि का मद। इन मदों से जो तुम भक्तों का अपराध करते हो, उसके कारण तुम्हारा भजन स्वीकार ही नहीं होता है। सब किया-कराया नष्ट हो जाता है।

तपो विद्या च विप्राणां निःश्रेयसकरे उभे ।
ते एव दुर्विनीतस्य कल्पेते कर्तुरन्यथा ॥

(भा. ९/४/७०)

तप और विद्या, ये कल्याण करती हैं लेकिन दीनता चली गयी, दुर्विनीतता आ गयी तो उल्टा फल देती हैं, वही तुमको मार डालेंगी भक्तापराध कराकर। अम्बरीष जी के प्रसंग में भगवान् ने दुर्वासा जी से कहा कि मैं कुछ नहीं कर सकता, आपको क्षमा नहीं कर सकता, उपाय बता सकता हूँ। भगवान् भी नहीं बचा सकते भक्तापराधी को। हम लोग भक्त बनते हैं, कोई रसिक बनता है लेकिन भक्त-द्वेष नहीं छोड़ पाते हैं। अरे, भगवान् भी तुम्हारा कल्याण नहीं कर सकते यदि भक्त-द्रोह करोगे। भगवान् ने दुर्वासा जी से कहा कि जिस भक्त का तुमने अपराध किया है, उसी की शरण में जाओ।

अयं ह्यात्माभिचारस्ते यतस्तं यातु वै भवान् ।
साधुषु प्रहितं तेजः प्रहर्तुः कुरुतेऽशिवम् ॥

(भा. ९/४/६९)

भक्तों के ऊपर अपने तेज का, शक्ति का प्रयोग किया तो तुम्हारा मंगल कभी नहीं हो सकता। चाहे माला फेरो, चाहे गोपाल जी की पूजा करो, कुछ नहीं होगा। कहने का भाव है कि हमलोग पतन के पथ पर चलते हैं, चाहे कट जाएँ, मर जाएँ लेकिन भक्तों से ईर्ष्या-द्वेष-द्रोह करना नहीं छोड़ पाते। इसलिए भक्तों से प्रेम करो, भावपूर्वक उनकी सेवा करो। भक्तों की भक्ति से भगवान् सबसे

ज्यादा प्रसन्न होते हैं। भक्तों की सेवा करने से साक्षात् भगवान् की सेवा हो जाती है। देवगुरु बृहस्पति जी ने कहा –

सीतापति सेवक सेवकाई ।
कामधेनु सय सरिस सुहाई ॥

(रा.च.मा.अयो. २६६)

भगवान् का जो भक्त है उसकी सेवा, सैकड़ों कामधेनुओं से बड़ी है। गौ माता तो है ही पूज्य लेकिन गौ से भी ज्यादा पूज्य है भक्त की सेवा, इसका ज्ञान नहीं है लोगों को। इसीलिए छुरे की धार पर चलकर कट जाते हैं अर्थात् परमार्थ-पथ से पतन हो जाता है। एक-दो साधारण गाय नहीं, दिव्य कामधेनु गाय; ऐसी सैकड़ों कामधेनु गायों के बराबर है भक्त की सेवा। आज साधु लोग माला बहुत फेरते हैं, ठाकुर सेवा बहुत करते हैं लेकिन साम्प्रदायिक द्वेष में फँसे हुए हैं। ये मेरा सम्प्रदाय, ये तेरा सम्प्रदाय |

न यस्य स्वः पर इति वित्तेष्वात्मनि वा भिदा ।
सर्वभूतसमः शान्तः स वै भागवतोत्तमः ॥

(भा. ११/२/५२)

मेरा-तेरा ये भेद दो कारणों से आता है – पैसे के कारण और शरीरों के कारण। पैसा आ गया तो ये हमारा पैसा है। शरीर है तो ये हमारा शरीर है, यह उसका शरीर है। जिसमें यह भेद नहीं है, समत्व है, वह उत्तम भागवत है।

आजकल क्या हो रहा है? हर आदमी रसिक बनता है, हमारे यहाँ रस है और कहीं नहीं है। हम लोग भेद पैदा करते हैं। सारा समाज इसी में डूब गया है। जबकि भगवद्भक्तों में, भगवान् के अवतारों में भेद करना नामापराध है। भागवत में कहा गया है – दृष्टा बनो। दृष्टा किसको कहते हैं? जैसे दो आदमी लड़ रहे हैं और देखने वाला दूर से देख रहा है, वह किसी तरफ नहीं है, न हमारी तरफ, न तुम्हारी तरफ, उसको दृष्टा कहते हैं। हम लोग दृश्य बन जाते है। 'दृश्य' माने दूसरा हमको देखेगा। हम लड़-भिड़ रहे हैं,

लड़ने-भिड़ने वाला दृश्य है और जो दूर से देख रहा है, वह दृष्टा है। भगवान् ने कहा –

गृहीत्वापीन्द्रियैरर्थान् यो न द्वेष्टि न हृष्यति ।
विष्णोर्मायामिदं पश्यन् स वै भागवतोत्तमः ॥

(भा. ११/२/४८)

जब तक शरीर है, भोजन करना ही पड़ेगा, नहीं तो मर जाओगे। कान हैं तो बातें सुननी पड़ेंगी, आँख है तो देखना पड़ेगा, इन्द्रियाँ हैं तो सब चीजें ग्रहण करनी पड़ेंगी लेकिन राग-द्वेष ग्रहण मत करो, दृष्टा बने रहो, वह उत्तम भागवत है। अगर राग-द्वेष का आदर हो गया तो तुम दृष्टा नहीं हो, चाहे अपने-आप तुम अपनी तारीफ कितनी भी कर लो कि हम बड़े रसिक हैं, निकुंज रस में डूबे हुए हैं लेकिन दृश्य बन गए तुम। भगवद् रस प्राप्ति का मतलब है द्वन्द (राग-द्वेष) मिट जाना, यह गोपी गीत में गोपियों ने कहा है –

इतररागविस्मारणं नृणां वितर वीर नस्तेऽधरामृतम् ॥

(भा. १०/३१/१४)

श्रीठाकुर जी का अधरामृत प्रेम बढ़ाता है, शोक नष्ट करता है, संसारी राग-द्वेष नष्ट कर देता है। 'ये हमारी स्त्री है, हमारा बेटा है, हमारा पैसा है' ये सब 'ममाहम्' भाव चला जाता है। अगर भगवान् का रस हमें मिला है तो राग-द्वेष दोनों नष्ट हो जायेंगे, अगर बने हुए हैं तब हम रसिक नहीं हैं। भ्रमर गीत में भी कहा गया है –

यदनुचरितलीलाकर्णपीयूषविप्रुट्-
सकृददनविधूतद्वन्द्वधर्मा विनष्टाः ।
सपदि गृहकुटुम्बं दीनमुत्सृज्य दीना
बहव इह विहङ्गा भिक्षुचर्यां चरन्ति ॥

(भा. १०/४७/१८)

रस की एक बूँद भी अगर किसी को मिल जाये तो उसी समय उसके राग-द्वेषादि सब द्वन्द्व मिट जाते हैं और हम लोगों में राग-द्वेष बना हुआ है तो रस कहाँ है? झूठा ही हल्ला मचा रखा है कि हम

रसिक हैं। द्वन्द्व चला गया तो संसार चला गया। फिर न कभी शोक व्यापेगा, न हर्ष व्यापेगा। जिसको रस मिल जाता है उसका राग इतना नष्ट हो जाता है कि उसी समय वह अपने घर-परिवार को छोड़ देता है, कुटुम्ब में लोग भूखे हैं, तड़फ रहे हैं लेकिन सबको छोड़कर चला जाता है। ऐसे सैकड़ों भिक्षुक घूम रहे हैं। यदि हमारा सांसारिक राग-द्वेष बना हुआ है तो हम भक्त नहीं हैं। इस बीमारी में हमारा समाज डूब गया है। कोई आदमी शरद पूर्णिमा की चाँदनी रात में कहे कि बड़ी धूप है, बड़ी गर्मी है तो गलत बात है। कहीं शरद पूर्णिमा की रात को धूप आती है? नहीं। वैसे ही कोई भगवान् का भक्त बन गया और उसके हृदय में राग-द्वेष का ताप है तो वह भक्त नहीं है। शरद पूर्णिमा की रात को कहीं सूर्य के ताप का अनुभव होता है? नहीं। ऐसे ही भगवान् की शरण में जाने वालों के हृदय में कैसे राग-द्वेष का ताप उदित हो सकता है? अगर राग-द्वेष का ताप है तो वहाँ कुछ रस नहीं है।

रागद्वेषवियुक्तैस्तु विषयानीन्द्रियैश्चरन् ।
आत्मवश्यैर्विधेयात्मा प्रसादमधिगच्छति ॥

(गी. २/६४)

तुम्हारा मन तभी निर्मल होगा, जब तुम्हारी इन्द्रियाँ राग-द्वेष से रहित हो जायेंगी। राग-द्वेष इतना हटाओ कि तुम्हारी इन्द्रियों तक से चला जाये। फिर तुम कुछ भी विषयों को ग्रहण करोगे, तुम्हारा मन निर्मल रहेगा। तुम नग्न स्त्रियों को देखोगे, कुछ नहीं होगा क्योंकि तुम्हारे हृदय में विषयों का राग नहीं है। मन ही सभी इन्द्रियों के प्रवर्तन में कारण होता है। मन से राग ग्रहण कर रहे हो तो अशुभ है। नहीं ग्रहण कर रहे हो तो शुभ ही शुभ है। इसलिए गोपियों ने कहा –

इतररागविस्मारणं नृणां वितर वीर नस्तेऽधरामृतम् ॥

जो सच्चा रसिक भक्त है, उसके अन्दर राग-द्वेष पैदा नहीं होता। जो भागवत, गीता और रामायण नहीं मानता है, उससे तो

बात ही नहीं करना चाहिए। फोकट ज्ञानियों के चक्कर में नहीं पड़ना चाहिए। भजन करो, राग-द्वेष छोड़कर चलो, परस्पर प्रेमपूर्वक रहो।

असाधारण सामर्थ्य के स्रोत – 'भक्तजन'

सौभरि ऋषि यमुना जी के किनारे भजन कर रहे थे, उन्हें भी भक्तापराध लग गया क्योंकि उन्होंने भगवान् के पार्षद गरुड़ को रोक दिया था, जो यमुना जी में मछली खाने आये थे। सौभरि जी ने सोचा कि हमारे आश्रम में जीव हत्या क्यों हो? यमुना जी में जीवहत्या ठीक नहीं है। इसलिए उन्होंने गरुड़ जी को शाप दे दिया कि अगर तुम यहाँ दुबारा आओगे तो तुम्हारी मृत्यु हो जायेगी; इस कारण सौभरि ऋषि को भक्तापराध लग गया। जिन जीवों की रक्षा के लिए उन्होंने अपराध किया, वे ही उनके पतन का कारण बन गये। परिणामतः यमुना जी में नर-मादा मत्स्य के विहार को देखकर ऋषि के मन में भोग की इच्छा जाग्रत हुई और भोग-विवश होकर ऋषि को मान्धाता की पचास लड़कियों के साथ विवाह करना पड़ा और पाँच हजार से ज्यादा उनकी संतानें हुईं।

अब यहाँ कोई शंका करे कि सौभरि ऋषि वृद्ध हो गए थे, पचास राजकुमारियाँ मिल गयीं, राजा मान्धाता ने दहेज में बहुत सामान दिया; यह तो पुरस्कार है, यह कोई दण्ड कहाँ हुआ?

इसका उत्तर आचार्यों ने श्रीमद्भागवत् की टीका में लिखा है कि यह बहुत बड़ा दण्ड है। मनुष्य को जब भोग मिलता है तो यह बहुत बड़ा दण्ड होता है। 'भोग मिलना' – यह विधाता की कृपा नहीं अपितु कोप होता है। 'सौभरि ऋषि को थोड़े में ही नरक भुगवा दिया' यह तो भगवान् की कृपा थी। ऋषि को गरुड़ जी के लिए शाप नहीं देना चाहिए था। यह ईश्वर की आज्ञा का उल्लंघन हुआ। भगवान् ने सृष्टि बनाई, सबका भोजन निर्धारित किया, गरुड़ का भोजन है – मछली। जो जिस जीव का आहार है, वह ईश्वरीय विधान है, उसको हम-तुम समझ नहीं सकते और फिर गरुड़जी

श्रीभगवान् के साक्षात् पार्षद हैं। भक्त कुछ भी करे, उसमें अभाव नहीं करना चाहिए।

एक बार शंकर जी खुली सभा में पार्वती जी को गोद में लिए दिगम्बर (नग्न) बैठे हुए थे। चित्रकेतु ने देखा तो उन्हें टोक दिया कि साधारण संसारी विषयी लोग भी ऐसी निर्लज्जता से स्त्री-रमण नहीं करते हैं, फिर आपके लिए तो बिल्कुल अशोभनीय है। इससे चित्रकेतु को अपराध लगा और पार्वती जी के शाप से उसे वृत्रासुर बनना पड़ा।

समरथ कहुँ नहिं दोषु गोसाईं ।
रबि पावक सुरसरि की नाईं ॥

(रा.च.मा.बाल. ६९)

अथवा

धर्मव्यतिक्रमो दृष्ट ईश्वराणां च साहसम् ।
तेजीयसां न दोषाय वह्नेः सर्वभुजो यथा ॥

(भा. १०/३३/३०)

इसलिए सामर्थ्यवान पुरुषों को कभी टोकना नहीं चाहिए। सूर्य सब जगह से रस खींचता है, मल से भी रस खींच लेता है लेकिन उसे दोष नहीं लगता, अग्नि सब कुछ भक्षण कर जाती है, मुर्दा भी खा जाती है, लेकिन उसे दोष नहीं लगता। गंगाजी में मल-मूत्र भी बहता है लेकिन दोष नहीं लगता। इसलिए हमको भक्तों के साथ विचार पूर्वक चलना चाहिए, लेकिन हमलोग आँख बन्द करके अंधाधुंध चलते हैं। इसलिए हमारा समाज कमजोर हो गया है। हर आदमी भक्तापराध कर रहा है।

वीरभद्र ने दक्ष का यज्ञ विध्वंस किया, बड़े-बड़े देवताओं, ऋषि-मुनियों के अंग-भंग कर दिए, किसी के दाँत तोड़े, किसी की दाढ़ी नोची। सब ब्रह्मा जी के पास गए और बोले - यह तो बड़ा अन्याय हुआ। शिवजी की गलती है, वह दक्ष के दामाद लगते हैं,

दामाद पुत्र की तरह होता है, उन्हें दक्ष को प्रणाम करना चाहिए था, प्रणाम न करने पर दक्ष ने टोका तो वह भी मारा गया और हम भी मारे गए, जबकि गलती तो शिवजी की थी। आर्य मर्यादा है कि छोटा, बड़े को प्रणाम करता है। तब वहाँ ब्रह्माजी ने कहा - तुम लोग जानते नहीं हो, धर्म की गति क्या है? शिवजी की गलती अवश्य है लेकिन –

तदाकर्ण्य विभुः प्राह तेजीयसि कृतागसि ।
क्षेमाय तत्र सा भूयान्न प्रायेण बुभूषताम् ॥

(भा. ४/६/४)

तेजस्वी पुरुष अगर अपराध भी करता है तो भी मनुष्य को उसमें अभाव नहीं करना चाहिए। अपराध करने वाले तेजस्वी पुरुष के प्रति तुमने कुछ भी दुर्विचार किया तो नष्ट हो जाओगे। शिवजी ने चाहे प्रणाम किया, चाहे नहीं किया, वह तेजस्वी हैं, उनमें दोष देखने वाले का कल्याण नहीं होगा। इसीलिए तुम मारे गये। सारा यज्ञ नष्ट हो गया। बड़े-बड़े देवता घायल हुए, केवल दक्ष की गड़बड़ी से। इसलिए तेजस्वी पुरुषों में अभाव नहीं करना चाहिए।

हिरण्यकशिपु ने छत्तीस हजार वर्ष तक एक पैर के अँगूठे के बल पर खड़े होकर आकाश की ओर देखते हुए तप किया, ऐसा तप कोई नहीं कर सकता, उसके तप की ज्वाला से समुद्र खौलने लगा, तीनों लोक काँप उठे, देवता प्राणों की रक्षा के लिए स्वर्ग से भाग गये लेकिन उसका सारा तप जल गया थोड़ी सी भूल से। जब उसने भक्त प्रह्लाद से द्रोह किया, यद्यपि उसे वरदान प्राप्त थे लेकिन फिर भी भक्तापराध करने के कारण भगवान् ने नरसिंहावतार लेकर उसे मार डाला।

जो अपराधु भगत कर करई ।
राम रोष पावक सो जरई ॥

(रा.च.मा.अयो. २१८)

भगवान् का अपराध कर लो, भगवान् कभी नाराज नहीं होते हैं, भगवान् कृपामय हैं लेकिन अगर भक्तों का अपराध करोगे तो तुम नहीं बचोगे, चाहे तुम तपस्वी हो, विद्वान हो। भगवान् ने स्वयं कहा है –

तपो विद्या च विप्राणां निःश्रेयसकरे उभे ।
ते एव दुर्विनीतस्य कल्पेते कर्तुरन्यथा ॥

(भा. ९/४/७०)

तप एवं विद्या कल्याण करती है लेकिन अगर तुम भक्तापराध करते हो तो वही तपस्या, विद्या तुमको उल्टा फल देगी, नष्ट कर देगी।

कालिय नाग यमुनाजी में आया सौभरि ऋषि के भक्तापराध के कारण। उन्होंने यमुना जी की रक्षा के लिए भक्त को शाप दिया लेकिन यमुना जी विषैली हो गयीं। अपराध किया सौभरि ने लेकिन दण्ड मिला सबको और मछलियों की रक्षा के लिए उन्होंने प्रयत्न किया था लेकिन कालिय नाग के कारण विषैले यमुना जल की अग्नि से असंख्य पक्षी उसमें गिरकर मर जाते थे। हजारों जीवों का वध हुआ। एक आदमी का भक्तापराध सारे संसार को नष्ट करता है। मीराबाई के अपराध से राजस्थान में अकाल पड़ गया था, विभीषण के अपराध से लंका नष्ट हो गयी।

साधु अवग्या तुरत भवानी ।
कर कल्यान अखिल कै हानी ॥
रावन जबहिं बिभीषन त्यागा ।
भयउ बिभव बिनु तबहिं अभागा ॥

(रा.च.मा.सुन्द. ४२)

इसलिए चाहे सारे पाप कर लो लेकिन भक्तापराध से बचना चाहिए। आज सारे समाज में यही हो रहा है, एक दूसरे की आलोचना-प्रत्यालोचना ही चल रही है। इसी कारण सारा वैष्णव समाज कमजोर पड़ गया, हम सब इसी कारण शक्तिहीन हो गये हैं।

ऐसे बहुत से साधु हैं जो अपने को बड़े एकान्तिक मानते हैं। कोई भक्त कुटिया में आ गया तो उससे चिढ़ते हैं, कहते हैं कि इसका मुँह देखने से हमारा भजन नष्ट हो गया। वैराग्य छोटी चीज है, भजन छोटी चीज है। क्या भजन कर सकते हैं हम लोग? क्या तपस्या कर सकते हैं? क्या दुर्वासा से ज्यादा तपस्वी हो जायेंगे? अरे, तुम्हारा भजन नष्ट होता है किसी का चेहरा देखने से, कोई तुम्हारी कुटिया में आ गया तो तुम्हारा भजन नष्ट हो गया, तो धिक्कार है तुम्हारे ऐसे भजन को। भगवान् के भक्त को देखकर प्रसन्न होना चाहिए। हम भक्त से घृणा कर रहे हैं, द्वेष कर रहे हैं, तो कितना भी भजन करते रहो, कितने भी एकान्तिक वैरागी बनते रहो, भगवान् की क्रोधाग्नि से नहीं बच पाओगे।

मोरें मन प्रभु अस बिस्वासा ।
राम ते अधिक राम कर दासा ॥

(रा.च.मा.उत्तर. १२०)

भगवान् से बड़ी है भक्त की शक्ति और कोई भक्त आ गया तो उसे देखकर तुम्हारा मुँह फूल गया तो उस मुँह में आग लगा दो। भक्तों से प्रेम नहीं हुआ तो कभी भी भक्ति नहीं मिलेगी। कोई कहे कि हम कुटिया में अकेले रहेंगे, यह सब आसुरी भाव हैं। किसी चीज को अपना समझना आसुरी भाव है, केवल माया है।

अद्वेष्टा सर्वभूतानां मैत्रः करुण एव च ।
निर्ममो निरहङ्कारः समदुःखसुखः क्षमी ॥

(गी. १२/१३)

भक्त का पहला लक्षण है कि वह जीवमात्र से द्वेष नहीं करता है, सब प्राणियों में मैत्री भाव रखता है, स्नेह युक्त व्यवहार करता है, करुणायुक्त व्यवहार करता है, संसार में कहीं उसकी ममता नहीं रहती, निरहंकारी होता है, दुःख-सुख के प्रति समान रहता है और जहाँ इसके विपरीत व्यवहार है, वहाँ भक्ति नहीं है।

भागवत धर्म से होगा 'परमात्म तत्त्व का बोध'

श्रीमद्भागवत् को पुराण तिलक क्यों कहा गया? क्योंकि इसमें आदि से अन्त तक केवल भागवत-धर्म का निरूपण है। पुराण तो अनेकों हैं परन्तु उनमें अन्य विषय-वस्तु का वर्णन है। जनकल्याण के लिए सब शास्त्रों की रचना की गयी लेकिन श्रीमद्भागवत् का लक्ष्य केवल एक ही है कि भगवान् हृदय में आ जाएँ, केवल भगवान् ही आना चाहिए। जब भगवान् हृदय में आ गए फिर किसी साधन की जरूरत नहीं है। जैसे न्याय, वैशेषिक आदि शास्त्र हैं, इन शास्त्रों से सृष्टि विषयक ज्ञान तो हुआ, लेकिन भगवान् हृदय में कैसे आयें? ये तत्त्व ज्ञान नहीं हुआ। ऐसा नहीं है कि ये शास्त्र निरर्थक हैं क्योंकि अध्यात्म क्षेत्र बहुत विशाल है, सृष्टि का ज्ञान भी आवश्यक है, इसलिए इन शास्त्रों को भी ऋषियों ने लिया परन्तु श्रीमद्भागवत् में एक ही बात कही गयी कि संसार में जितने धर्म हैं, यदि उनसे प्रभु हृदय में नहीं आये तो उनका अनुष्ठान करना श्रम-मात्र है। इसकी घोषणा सबसे पहले वेदव्यास जी ने की।

धर्मः स्वनुष्ठितः पुंसां विष्वक्सेनकथासु यः ।
नोत्पादयेद्यदि रतिं श्रम एव हि केवलम् ॥

(भा. १/२/८)

इस एक श्लोक से व्यास जी ने न्याय, वैशेषिक, अद्वैतवादी सभी मत काट दिए। वह ज्ञान निरर्थक है जिससे यदि भगवान् में रति नहीं हुई। भगवान् के नाम, रूप, लीला, धाम, धामी, जन आदि में अगर जीव को रति पैदा नहीं हुई तो समग्र शास्त्रों का अध्ययन करना केवल श्रम-मात्र है, व्यर्थ है। इसलिए इस एक ही श्लोक से भागवतधर्महीन शास्त्रों व उनके लक्ष्य का खंडन हो गया। यही गोस्वामी तुलसीदास जी ने लिखा है –

सो सुखु करमु धरमु जरि जाऊ ।
जहँ न राम पद पंकज भाऊ ॥
जोगु कुजोगु ग्यानु अग्यानू ।
जहँ नहिं राम पेम परधानू ॥

(रा.च.मा.अयो. २९१)

वे सुख, कर्म, धर्म, योग, ज्ञान आदि सब व्यर्थ हैं, यदि भगवान् के चरणों में प्रीति उत्पन्न नहीं करते हैं। सगुण-साकार, निर्गुण-निराकार का ज्ञान वेदों में कहा गया है, लेकिन भगवान् बड़े कृपामय हैं, वह चाहते हैं कि ये अनन्त जीव बेचारे क्यों कष्ट पाते हैं? ये एकमात्र मेरी शरण में आ जाएँ तो सदा के लिए उनके आत्यन्तिक दुःख की निवृत्ति हो जाए। इसी को भगवान् ने गीता में कहा है कि सभी धर्मों को छोड़कर एकमात्र मेरी शरण में आ जाओ, मैं सभी पापों से मुक्त कर दूँगा, कोई भी चिन्ता मत करो।

सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज ।
अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः ॥

(गी. १८/६६)

भगवान् का अवतार क्यों होता है? भगवान् का अवतार एक ही लक्ष्य से होता है कि सभी जनों को **विशुद्ध प्रेमलक्षणा भक्ति** मिल जाये। वेदस्तुति में कहा गया है कि भगवान् प्रलय के बाद योगनिद्रा में सो रहे थे तो वेदों ने उनको जगाया और सृष्टि उत्पन्न करने की प्रार्थना की –

दुरवगमात्मतत्त्वनिगमाय तवात्ततनो-
श्चरितमहामृताब्धिपरिवर्तपरिश्रमणाः ।
न परिलषन्ति केचिदपवर्गमपीश्वर ते
चरणसरोजहंसकुलसङ्गविसृष्टगृहाः ॥

(भा. १०/८७/२१)

आत्मतत्त्व बड़ा दुर्गम है, सहज में जाना नहीं जा सकता। जीव का स्वरुप क्या है? परमात्मा क्या है? ये जीव नहीं जान सकता,

इसलिए उसका तत्त्वज्ञान कराने के लिए भगवान् अवतार लेते हैं। अवतार लेकर भगवान् ने लीला की, उनकी सभी लीलाएँ व कर्म दिव्य हैं। भगवान् ने स्वयं कहा –

जन्म कर्म च मे दिव्यमेवं यो वेत्ति तत्वतः ।
त्यक्तवा देहं पुनर्जन्म नैति मामेति सोऽर्जुन ॥

(गी. ४/९)

मेरा जन्म और कर्म अर्थात् सभी लीलायें दिव्य हैं, जो उन्हें तत्त्व से जानता है, देह छूटने के बाद उसका पुनर्जन्म नहीं होता, मेरे पास आ जाता है। वह लीला क्या है? अमृत का समुद्र है। अनादिकाल से जो श्रम हम लोग भोग रहे हैं, वह भगवान् की लीला-गुणगान करने से चला जाता है। भगवान् के चरण कमलों के जो हंस हैं, ऐसे संत-महापुरुषों के द्वारा जो कथा-कीर्तन होता है, उससे देह-गेहादि की सभी आसक्तियाँ छूट जाती हैं। जब आसक्ति चली गयी तो जीव मुक्त हो गया। सबसे बड़ी गंदगी आसक्ति है। जैसे शरीर गन्दा हो जाता है, तो फिर हम धोते हैं, स्नान करते हैं। कपड़ा गन्दा हो जाता है तो उसको साफ करते हैं, साबुन लगाते हैं, वैसे ही मन गन्दा हो जाता है, कैसे गन्दा होता है? आसक्ति से गन्दा होता है। आसक्ति मन का मल है, इससे अन्तःकरण की पवित्रता नष्ट हो जाती है। हम अपने को साधु कहते हैं और मन में गंदगियाँ भरी पड़ी हैं। आसक्ति है धन की, यश की। आसक्तियों से ही कामनाएँ पैदा होती हैं, अगर आसक्ति चली जाए तो कोई कामना पैदा नहीं होगी।

कायेन मनसा बुद्धया केवलैरिन्द्रियैरपि ।
योगिनः कर्म कुर्वन्ति सङ्गं त्यक्त्वात्मशुद्धये ॥

(गी. ५/११)

जो चतुर योगी लोग होते हैं, वे आसक्तियों को छोड़कर शरीर, मन, बुद्धि, इन्द्रियों से आत्मशुद्धि के लिए कर्म करते हैं। वे हर कर्म करते हुए देखते हैं कि आसक्ति बढ़ रही है कि घट रही है। भगवान्

ने कहा कि योगी वही है जो आसक्ति को छोड़कर आत्मशुद्धि के लिए कर्म करता है क्योंकि आसक्ति अन्तःकरण का मल है परन्तु हम जैसे मूर्ख लोग साधन तो बहुत करते हैं लेकिन मल बढ़ाते हैं। हर कर्म में आसक्ति बढ़ाते हैं और अहम् की वाणी बोलते हैं – 'जानता नहीं हम इतने लाख नाम जप करते हैं', 'जानता नहीं हम इतने बड़े विद्वान् हैं' अर्थात् हमारा प्रत्येक कर्म आसक्ति बढ़ाने वाला होता है, गन्दगी बढ़ती रहती है; इसलिए हम जैसे लोग योगी नहीं हैं। श्रीमद्भागवत् में साधकों के लिए कहा गया है –

न शिष्याननुबध्नीत ग्रन्थान्नैवाभ्यसेद् बहून् ।
न व्याख्यामुपयुञ्जीत नारम्भानारभेत् क्वचित् ॥

(भा. ७/१३/८)

साधु को व्याख्यान नहीं देना चाहिए, कथा नहीं कहनी चाहिए, (आज संसार में सबसे ज्यादा पैसा साधुओं के पास ही मिलता है।) शिष्य नहीं बनाना चाहिए, बहुत ज्यादा ग्रन्थों का अध्ययन नहीं करना चाहिए, बड़े-बड़े कार्यों का आरम्भ नहीं करना चाहिए क्योंकि इससे आसक्ति बढ़ जाती है और उससे पतन होने का डर है। आसक्ति मल है और वह मल हम लोगों को अच्छा लगता है, जितना पैसा आएगा उतना खुश होते हैं। समाज में चारों ओर यश की होड़ लगी हुई है। हर मनुष्य एक-दूसरे के वैभव को देखकर होड़ करता है क्योंकि जहाँ ममता है वहाँ राग-द्वेष जरूर पैदा होते हैं।

ममता तरुन तमी अँधिआरी ।
राग द्वेष उलूक सुखकारी ॥

(रा.च.मा.सुन्दर. ४७)

भगवान् राम ने कहा है कि ममता काली रात है। यदि तुम्हारी अपने बच्चे में ममता है, उस बच्चे को कोई मारेगा तो तुम उससे द्वेष करोगे, कोई बच्चे को प्यार करेगा तो तुम उसमें राग करोगे और यदि अपनी स्त्री में ममता है, उस स्त्री को कोई देखेगा तो उससे द्वेष

करोगे। अर्थात् जहाँ ममता है, वहाँ राग-द्वेष जरूर पैदा होगा। धन में ममता है तो एक व्यापारी दूसरे से द्वेष करता है। ये दोनों चीजें (राग-द्वेष) जरूर पैदा करती हैं। ममता जहाँ है, वहाँ राग भी पैदा होगा, द्वेष भी पैदा होगा। इसलिए आसक्ति क्या है? मेरापन का भाव ही आसक्ति है। इसीलिए भगवान् ने गीता में कहा कि आसक्ति को छोड़कर योगी लोग कर्म करते हैं और अगर तुम आँख बन्द करके पैसा इकट्ठा कर रहे हो तो तुम योगी नहीं हो। जब मनुष्य सच्चाई से चलता है तब उसे भागवतधर्म की सिद्धि अवश्य होती है लेकिन हम लोग भगवान् का आश्रय छोड़कर अन्याश्रय करते हैं इसलिए भागवतधर्म की सिद्धि नहीं होती है।

ब्रह्म का सच्चिदानन्द-स्वरुप व प्रेमोत्पत्ति-क्रम

भगवत्प्राप्ति, रस प्राप्ति, प्रेम प्राप्ति एक ही है। भगवान् मिले उसे शाश्वत प्रेम मिला, प्रेम मिला तो रस मिला और जहाँ रस, प्रेम नहीं वहाँ भगवान् नहीं क्योंकि वेदों में कहा गया है – **"रसो वै सः। रसं ह्येवायं लब्ध्वाऽऽनन्दी भवति।"** (तैत्तरीयो. २/७) वह पुराणपुरुष, सनातन पुरुष रस रूप है उसको प्राप्त करने के बाद जीव आनन्द रूप हो जाता है।

बहुत से लोग विवाद करते हैं कि जीव ब्रह्म है **'जीवो ब्रह्मैव न परः'** ठीक है यह भी सही है लेकिन कैसा ब्रह्म है? जो पहले रसमय, आनन्दमय नहीं था परन्तु उस रसमय, आनन्दमय वस्तु के मिल जाने से वह आनन्दरूप हो गया। इसलिए **'आनन्दी भवति'** कहा। ये जीव पहले आनन्दमय नहीं था, उसकी प्राप्ति के बाद आनन्दमय हो गया। पहले क्यों नहीं था? यह बहुत बड़ा विवाद है, कुछ लोग कहते हैं कि आनन्दमय नहीं था, यह उसको भ्रम है, उस पर विवर्त्तवाद चलाया गया क्योंकि वह यदि यह मान लेते हैं कि आनन्दरूप नहीं था तो उनका अद्वैतभाव सिद्ध नहीं होगा इसलिये केवल अद्वैत की सिद्धि के लिए उन्होंने विवर्त्तवाद चलाया। कहते हैं उसको भ्रम है, ठीक है भ्रम ही सही, कुछ भी कारण मान लो परन्तु उसकी प्राप्ति से आनन्दमय हो गया।

अतः जो रस, प्रेम, आनन्दरूप है उसी का नाम भगवान् है। कुछ लोग कहते हैं कि भगवान् नित्यज्ञानमय, बोधमय है क्योंकि वह बोध, ज्ञान को ही आनन्द मानते हैं। कुछ प्रेम को आनन्द मानते हैं। चाहे रस है, चाहे ज्ञान है, चाहे बोध है, चाहे प्रेम है, सब एक ही आनन्द है।

रूपं यदेतदवबोधरसोदयेन
शश्वन्निवृत्ततमसः सदनुग्रहाय ।

(भा. ३/९/२)

उसका रूप अवबोध रस, ज्ञानमय रस है। अज्ञानमय रस नहीं, जैसे हमलोग लड्डू खाते हैं तो रस की प्रतीति होती है, ये अज्ञानमय रस है। विषयों को भोगो तो विषय भोग की और इच्छा बढ़ती है, सदा अतृप्ति बनी रहती है। जिस वस्तु में अतृप्ति है वह मिथ्या है, अनित्य है, अशुचि है, दुःखरूप है, अनात्म (जड़) है। लड्डू खाओ, आनन्द आया लेकिन वह थोड़ी देर का था इसलिए वह जड़ है। जहाँ तृष्णा है वहाँ प्रेम, रस नहीं है। रस तो बहुत आगे की चीज है, प्रेम ही पककर रस बनता है और प्रेम के पहले भाव होता है, भाव ही पककर प्रेम बनता है। भक्तिरसामृतसिन्धु में रूप गोस्वामी जी ने लिखा है –

आदौ श्रद्धा ततः साधुसङ्गोऽथ भजन-क्रिया
ततोऽनर्थ निवृत्तिः स्यात्ततो निष्ठा रुचिस्ततः ।
अथासक्तिस्ततो भावस्ततः प्रेमाभ्युदञ्चति
साधकनामयं प्रेम्नः प्रादुर्भावं भवेत् क्रमः ॥

(भक्तिरसामृतसिन्धु)

पहली सीढ़ी है श्रद्धा, दूसरी साधुसंग (भक्तों का संग), तीसरी भजन क्रिया, चौथी अनर्थ की निवृत्ति (सही भजन हुआ, सही साधु संग हुआ तो अनर्थ हट जायेंगे)। ये काम, क्रोध, लोभ, मोहादि अनर्थ हैं; हम पैसा, लड्डू-पेड़ा में झगड़ रहे हैं, ये अनर्थ है। जब अनर्थ हटे तब निष्ठा आयी। निष्ठा माने अब वह कभी भगवद्मार्ग से नहीं गिरेगा, चाहे मौत आवे चाहे कुछ हो।

धौतात्मा पुरुषः कृष्णपादमूलं न मुञ्चति ।
मुक्त सर्वपरिक्लेशः पान्थः स्वशरणं यथा ॥

(भा. २/८/६)

जो नित्य कथा सुनता है, कीर्तन करता है इससे भगवान् उसके हृदय में आ जाते हैं और उसके हृदय में आकर अनर्थों को दूर कर देते हैं। जब अनर्थ दूर हो गए तब उसका मन धुल गया फिर वह भगवान् के चरण कमलों को नहीं छोड़ेगा, चाहे मृत्यु आये चाहे कुछ हो। जैसे बड़ी जोर की आँधी आ रही है, पानी बरस रहा है, यदि कोई उसमें फँस गया और उसको बचने के लिए अपना घर मिल जाये तो वह फिर घर को नहीं छोड़ता है। वैसे ही जिसके अनर्थ हट गये फिर वह भगवान् की शरण कभी नहीं छोड़ता है। शरण माने होता है **'शरणं ग्रह रक्षित्रोः'** (घर या रक्षक), भगवान् का आश्रय ही शरण है, अब वह भगवान् की शरण को छोड़कर अनात्म पदार्थ पैसा-भोगों, तृष्णाओं में नहीं जायेगा, अगर जाता है तो इसका मतलब अभी उसको शरण नहीं मिली। जिसको रस की प्राप्ति हो गयी, वह क्यों पैसा बटोरेगा? क्यों भोगों में जाएगा? धन संग्रह करते हैं हम लोग, मान-सम्मान के भूँखे हैं और दावा करते हैं कि हम बड़े रसिक हैं, बड़े प्रेमी हैं। अरे, रस तो बड़ी दूर है, अभी हम लोगों में प्रेम तो क्या भाव भी नहीं आया। इसके बाद पाँचवीं सीढ़ी है निष्ठा, उसके बाद रूचि फिर आसक्ति, फिर भाव, तब अंत में प्रेम की प्राप्ति होती है। इसलिए प्रेम तो दूर है अगर किसी के अन्दर भाव भी है तो उसके ९ लक्षण हैं –

क्षान्तिरव्यर्थकालत्वं विरक्तिर्मानशून्यता ।
आशाबन्धः समुत्कण्ठा नामगाने सदा रुचिः ।
आसक्तिस्तद्गुणाख्याने प्रीतिस्तद्वसतिस्थले ॥

(भक्तिरसामृतसिन्धु)

१. क्षान्तिः – वह क्षमाशील होगा। **२. अव्यर्थ कालत्वम् –** एक क्षण भी इधर-उधर बात नहीं करेगा, हम लोग इधर-उधर जाते हैं, फालतू बात करते हैं, इसका मतलब अभी भाव ही नहीं है। **३. विरक्तिः –** राग हट गया, हमलोग गप्प मारते हैं, संसारियों से मिलते हैं, यह सब भावहीन पुरुषों के लक्षण हैं। **४. मानशून्यता –**

मान चाहने के लिए हमलोग कहते हैं – हम बड़े प्रेमी हैं, हम बड़े रसिक हैं, हम बड़े ज्ञानी हैं, मान शून्यता होगी तो दैन्य आ जाएगा जिसमें दैन्य होता है वह अपने आपको बड़ा नहीं समझता है। चैतन्य महाप्रभु जी ने कहा –

न प्रेमगन्धोऽस्ति दरापि मे हरौ
क्रन्दामि सौभाग्यभरं प्रकाषितुम् ।
वंशी विलास्यानन लोकनं विना
विभर्मि यत् प्राणपतङ्गकान् वृथा ॥

प्रेमी अथवा रसिक बनना तो दूर की बात है, मेरे में तो अभी प्रेम की गंध भी नहीं है, केवल पेट पालने के लिए रोता हूँ। अब कहाँ ये बातें और कहाँ हम जैसे लोग जो कहते हैं – हम बड़े प्रेमी हैं, हम बड़े भक्त हैं, हम बड़े वैष्णव हैं, हमको भगवद् अनुभूति हो गयी। हम लोग भगवान् के दर्शन के बिना जी रहे हैं क्योंकि प्रेम नहीं, केवल पेट पाल रहे हैं और दावा करते हैं हम बड़े प्रेमी हैं, रसिक हैं, भक्त हैं। प्रेम तो क्या यहाँ अभी भाव भी नहीं आया। **५. आशाबन्धः –** निराश नहीं होता, दिन-रात भजन करता है, प्रभु अवश्य मिलेंगे। **६. समुत्कण्ठा –** ऐसी उत्कंठा रहे कि जब मिलने वाले प्रभु हैं तो क्यों नहीं मिले (प्रभु मिलन की उत्कण्ठा बढ़ती रहे)। **७. नामगाने सदा रुचिः –** सदा भगवन्नाम कीर्तन, भगवल्लीला, सत्संग आदि में रूचि बनी रहे। **८. आसक्तिस्तद्गुणाख्याने –** भगवान् के गुणों में, लीलाओं में आसक्ति हो जायेगी। **९. प्रीतिस्तद्वसतिस्थले –** धाम में जहाँ प्रभु ने लीला की वहाँ प्रेम अवश्य होता है, जो लोग कहते हैं धाम में नहीं रहो वहाँ अपराध लगेगा उन्हें प्रेम वगैरह कुछ नहीं मिला। अगर धाम में प्रीति नहीं है तो कुछ नहीं, प्रेम का अंकुर है भाव, भाव है तो ९ चीजें अपने आप आ जाएँगी और ९ में जहाँ एक भी नहीं वहाँ बस वाद-विवाद हो रहा –

हरि रस तब ही तो कछु पइहै ।
गऐं सोच आऐं नहिं आनँद, ऐसौ मारग गहियै ॥
कोमल बचन, दीनता सब सौं, सदा अनंदित रहियै ।
बाद-बिबाद हर्ष-आतुरता, इतौ द्वंद जिय सहियै ॥
ऐसी जो आवै या मन में, तौ सुख कहँ लौं कहियै ।
अष्ट सिद्धि नव निधि, 'सूरज' प्रभु, पहुँचै जो कछु चहियै ॥

(सूरदास जी)

जहाँ वकालत हो रही है, बहस हो रही है, वहाँ प्रेम कहाँ है? पैसा चला गया तो शोक नहीं हो रहा, सम्मान मिल गया तो आनन्द नहीं है। इस प्रकार जहाँ भाव है तो आनन्द रहता है। इसलिए हमलोगों की स्थिति ये है कि अभी भाव ही प्राप्त नहीं हुआ तो प्रेम और रस कहाँ से प्राप्त हो जाएगा। केवल मान (प्रतिष्ठा) प्राप्ति के लिए मिथ्या प्रलाप करते हैं। मान शून्यता होती तो यही कहते कि पेट भरने के लिए ऐसा कहते हैं। तुलसीदास जी ने भी कहा – हम तो पेट भरने के लिए राम नाम लेते हैं। कहाँ तो हम बड़े प्रेमी हैं, बड़े रसिक हैं, बड़े भक्तराज हैं, बड़े वैष्णव हैं, ऐसा कहते हैं, यह मान-शून्यता नहीं है। यहाँ मान-सम्मान प्राप्ति ही लक्ष्य है। इसलिए हम जैसे लोगों ने भगवान् को तो साधन बना लिया और स्वयं हम प्राप्तव्य बन गए हैं, हमको समझो, हम प्रेमी हैं, भक्त हैं ऐसा दिखावा करते हैं। सच्चा प्रेमी तो अपने प्रेमास्पद को ही सब कुछ मानता है।

जो कुछ किया सो तुम किया,
मैं कुछ किया सो नाहिं ।
कहो कही कि मैं किया,
तुम ही थे मुझ माहिं ॥

भगवद्-भागवत करुणा का एक दृश्य

सनातन गोस्वामी जी नीलाचल के लिए जब जाने लगे तो रास्ते में उनको दूषित जलवायु मिली, जंगली वनस्पतियों का गन्दा रस युक्त पानी पीने से खाज (एक विशेष प्रकार की खुजली) हो गयी जिससे शरीर सड़ गया और उससे ऐसा रस निकलता था जिसकी दुर्गन्ध दूर-दूर तक जाती थी। किन्तु वह नीलाचल की यात्रा में सफल रहे, वह दृश्य तो देख ही लिया – वह वन-उपवन जहाँ महाप्रभु जी एकान्त में प्रेमोन्माद में श्रीकृष्ण को बुलाते थे। वह आनन्द ही अलग होता है (वह सबको नहीं मिलता), उसको देखने के लिए सनातन जी गए थे। महाप्रभु जी साक्षात् दैन्य की मूर्ति थे। हम यह कह सकते हैं कि संसार में जो कुछ दैन्य आया है वह चैतन्य महाप्रभु जी की कृपा से आया है, ऐसा दैन्य न पढ़ा गया और न सुना गया। सच्चा दैन्य जब आ जाता है तो भगवद्कृपा आ जाती है, महाप्रभु जी ने कहा है –

तृणादपि सुनीचेन तरोरपि सहिष्णुना ।
अमानिना मानदेन कीर्त्तनीयः सदा हरिः ॥

(शिक्षाष्टक – ३)

अगर सच्चा दैन्य है तो निश्चित रूप से तुम प्रभु की दया के पात्र बन जाओगे। दैन्य से प्रभु की कृपाशक्ति मिलती है और फिर मनुष्य माया को जीत लेता है। ***छोटे बन जाओ, माया को पार हो जाओगे और बड़े बनते जाओगे तो एक दिन जरूर माया खा जाएगी*** लेकिन हम लोग बड़ा बनते हैं, गद्दी चाहते हैं, नाम चाहते हैं, ऐश्वर्य चाहते हैं, सम्पत्ति चाहते हैं, तो माया क्या करेगी? पटक देगी।

इनमें दैन्य की परकाष्ठा थी, जगन्नाथ मन्दिर के राजपथ पर सनातन जी वगैरह नहीं जाते थे, उनका ऐसा भाव था कि इस पथ

पर तो मन्दिर के पुजारी आदि जाते हैं, भक्तजन जाते हैं, हमारा शरीर गन्दा है, इस राजपथ पर हम कैसे चलें? दूर से जगन्नाथ मंदिर की ध्वजा का दर्शन कर लेते थे, यह शरीर गन्दा है यह मंदिर में जाने लायक नहीं है। यह सब दैन्य की कथाएँ आज मात्र कथाएँ बन गयीं हैं, आज ऐसा दैन्य न कहीं सुनाई पड़ता है, न दिखाई पड़ता है। देखा जाता है कि मंदिर में दर्शन करने बहुत से लोग जाते हैं लेकिन एक-दूसरे को धक्का लगाते हैं कि हम पहले दर्शन करेंगे, हम पहले जाएँगे, यह सब क्या है? ये सब देखकर याद आता है कि ये कोई दैन्य नहीं है, दैन्य तो वह था कि भक्तजन मन्दिर में भी प्रवेश नहीं करते थे, यह शरीर मंदिर में प्रवेश करने लायक ही नहीं है। सनातन जी नीलाचल पहुँचकर वहाँ रुके जहाँ हरिदास ठाकुर रहते थे, क्योंकि वहाँ महाप्रभु जी के पास कैसे रुक सकते हैं, उनके भक्तों के बीच में कैसे रुक सकते हैं, ये दैन्य है। महाप्रभु जी स्वयं उनका दर्शन करने जाते थे। ***जो जितना दीन बनता है, वह उतना ही भगवान् का प्यारा बन जाता है और जो अभिमानी है उससे भगवान् द्वेष करते हैं।*** नारद भक्ति सूत्र में लिखा है –

"ईश्वरस्याप्यभिमानद्वेषत्त्वाद् दैन्यप्रियत्वाच्च ।"

(ना.भ.सू. २७)

जब तक हमारे अन्दर 'अहम्' है, हम भगवान् के कृपापात्र नहीं बन सकते। इसलिए दीन बनो, प्रभु का नाम दीनानाथ है, वह दीन से प्रेम करते हैं –

मिलि मुनिबृंद फिरत दंडक बन, सो चरचौ न चलाई ।
बारहि बार गीध सबरी की, बरनत प्रीति सुहाई ॥

रामावतार में भगवान् दण्डकारण्य में बड़े-बड़े ऋषि-मुनियों के साथ घूमते थे लेकिन भगवान् ने उनकी चर्चा नहीं की, याद भी नहीं किया कि कितने बड़े ऋषि थे और चर्चा करते थे तो बारम्बार गीध, शबरी की; नीच जाति की शबरी जिसने जूठे बेर खिलाये थे,

भगवान् बोले ऐसा स्वाद आज तक कभी नहीं आया। उसकी याद करते थे। इस प्रकार सनातन जी के पास महाप्रभु जी स्वयं जाते थे, दर्शन देने नहीं, उनका दर्शन करने। भगवान् स्वयं दीन बन जाते हैं –

निष्किञ्चना वयं शश्वन्निष्किञ्चनजनप्रियाः ।
तस्मात् प्रायेण न ह्याढ्या मां भजन्ति सुमध्यमे ॥

(भा. १०/६०/१४)

भगवान् रुक्मिणी से बोले – "देवी ! मैं स्वयं सबसे बड़ा गरीब हूँ और गरीबों से ही प्यार करता हूँ, निष्किञ्चन ही मेरा भजन कर सकता है, सम्पन्न व्यक्ति मेरा भजन नहीं कर सकता।"

महाप्रभु जी स्वयं सनातन जी का दर्शन करने जाते थे और उनके दुर्गन्धित खाज युक्त शरीर को बलात् आलिंगन करके लिपटा लेते थे, ऐसा वह प्रतिदिन करते थे, जाते ही उनको आलिंगन कर लेते थे, ऐसे लिपट जाते थे जैसे भक्त भगवान् से या भगवान् भक्त से लिपट जाते हैं। उस आलिंगन के स्वाद को हमलोग क्या समझेंगे? ये हमारा पाषाण हृदय नहीं समझ सकता है। सनातन जी मना करते थे कि प्रभु ! इसमें इतना गन्दा रस निकल रहा है, दुर्गन्ध है, आप इसको मत आलिंगन करो। गौर सुन्दर महाप्रभु जी कहते- "सनातन ! मैं स्वयं पवित्र होने के लिए तुम्हारा आलिंगन करता हूँ।" भगवान् कितना भक्तों में भाव रखते हैं, उसको हम जैसे भावहीन प्राणी नहीं समझ सकते, क्योंकि हमारे हृदय में भक्ति नहीं है, हमलोग भाव शून्य हैं, हमारा पाषाण हृदय है।

आखिर में सनातन जी के मन में घृणा हुयी कि इस गन्दे, विषाक्त शरीर को आलिंगन करने से महाप्रभु का सुनहरा गौरसुन्दर तप्तकाञ्चन दिव्य देह गन्दा हो जाता है, तो वह भागने लगे कि महाप्रभु जी हमको स्पर्श न करें लेकिन कहाँ भागकर जाओगे

भगवान् से? भगवान् तो भक्त को ढूँढ़ लेता है, भक्त का अन्वेषण करता है। सूरदास जी ने एक बड़ा सुन्दर पद गाया है –

प्रभु कौ देखौ एक सुभाइ ।
अति-गंभीर-उदार-उदधि हरि, जान-सिरोमनि राइ ॥
तिनका सौं अपने जन कौ गुन मानत मेरु-समान ।
सकुचि गनत अपराध-समुद्रहिं बूँद-तुल्य भगवान् ॥
बदन-प्रसन्न-कमल सनमुख ह्वै देखत हौं हरि जैसैं ।
बिमुख भए अकृपा न निमिषहू, फिरि चितयौं तौ तैसैं ॥
भक्त-बिरह-कातर करुनामय, डोलत पाछैं लागे ।
सूरदास ऐसे स्वामी कौं देहिं पीठि सो अभागे ॥

(सूर वि.प. ९)

सूरदास जी कहते हैं – कन्हैया का स्वभाव कैसा है? श्यामसुन्दर का भक्तों से बड़ा गहरा प्रेम है, इतना गहरा प्रेम है कि गोविन्द सखा जंगल में शौच कर रहे हैं और कृष्ण पहुँचकर उनके साथ खेल रहे हैं। भगवान् का भक्तों से इतना गंभीर प्यार है कि वह भक्तों के बिना रह नहीं सकते। भक्त की थोड़ी सी सेवा को भगवान् सुमेरू पहाड़ की तरह मान लेते हैं और जब भक्त अपराध करता है तो उसके समुद्र जैसे अपराध को एक बूँद की भाँति समझते हैं। सूरदास जी कह रहे हैं – श्रीकृष्ण का मुख खिला हुआ कमल की तरह प्रसन्न है, अरुणोदय की बेला में ताजे खिले हुये कमल की तरह मुस्कुराहट है। आगे कहते हैं – भक्त अगर भगवान् से विमुख हो गया, किसी कारणवश गिर गया तो गिरने के बाद भी भगवान् की वही कृपा रहती है, वही मुस्कराहट रहती है, एक क्षण के लिए भी भगवान् उदास नहीं होते। ये नहीं कि तू विमुख हुआ तो तुझे छोड़ दिया, ये सब नहीं है और अगर भक्त कहीं चला गया तो भगवान् भक्त विरह में रोते हैं, तड़पते हैं, हमारा भक्त कहाँ है? भक्त के विरह में अश्रु बहाते हैं। भगवान् की प्रतिज्ञा है –

"मया परोक्षं भजता तिरोहितं
मासूयितुं मार्हथ तत् प्रियं प्रियाः ॥"

(भा. १०/३२/२१)

भगवान् ने गोपियों से कहा – मैं भी तुम्हारी तरह रोता हूँ। अगर भक्त भगवान् से विमुख हो गया है प्रभु को भूल गया, फिर भी प्रभु उसके पीछे-पीछे जा रहे हैं, ऐसा श्यामसुन्दर का स्वभाव है, पर हम जैसे इन बातों पर विश्वास नहीं कर पाते हैं क्योंकि नास्तिक हैं, भावहीन हैं।

खुद रहा याद खुदा भूल गया,
भूलना था क्या क्या भूल गया।
तेरी रहमत तो न भूलेगी मुझे
मैं तुझे भूल गया भूल गया भूल गया ॥

अरे ! हम जैसे अभागे ऐसे प्रभु को भूल गए। सनातन जी ने सोचा – चलो शरीर छोड़ दें, जगन्नाथ जी के रथ के पहिये के नीचे दबकर मर जाएँ क्योंकि ये महाप्रभु जी तो आलिंगन करना छोड़ेंगे नहीं और इस शरीर में से गन्दा रस निकलता रहता है और वह इसे हृदय से लगा लेते हैं। महाप्रभु समझ गए कि यह आत्महत्या की सोचता है। महाप्रभु जी बोले – "सनातन ! यह शरीर किसका है? शरीर किसको समर्पण किया है? " सनातन जी बोले – "कृष्ण को" तो शरीर कृष्ण का है कि तुम्हारा है? समझ गए, अरे कृष्ण का शरीर है और मैं इसको खत्म करने की सोचता हूँ। मैं क्या करने जा रहा था; अच्छा, अब नहीं मरूँगा। अब शरीर नहीं छोड़ूँगा लेकिन नीलाचल छोड़ दूँगा क्योंकि मैं नहीं सह सकता कि मेरे गन्दे शरीर को जिसमें से गन्दा रस निकल रहा है इसको ये गौर सुन्दर महाप्रभु आलिंगन करें, अपने शरीर में लगाएँ। लेकिन महाप्रभु जी के भाव को देखो, इसको भाव कहते हैं यानी उस गन्दे रस में भी चिन्मय भावना महाप्रभु जी ही कर सकते हैं। हमलोग क्या कर सकते हैं? महाप्रभु जी ने कहा कि मैं अपने को पवित्र करने के लिए तुम्हारा

आलिंगन करता हूँ। सोचो जरा, गन्दा रस निकल रहा है और इसमें चिन्मय भाव कौन कर सकता है? भगवान् ही कर सकते हैं, ऐसा भावुक भगवान् ही है।

'ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम् ।'

(गी. ४/११)

महाप्रभु जी ने सनातन को बुलाकर कृपामयी दृष्टि से आलिंगन किया और उनके शरीर के सारे रोग दूर हो गए, एकदम तप्तकाञ्चन की तरह शरीर चमक उठा। इस प्रकार उन्होंने दैन्य की पराकाष्ठा को क्रियात्मक रूप से दिखाया।

ब्रह्म की रसरूपता

वेदों में कहा गया है कि रस ही ब्रह्म है **'रसो वै सः'** कहीं-कहीं **'आनन्दं ब्रह्म'** आनन्द ही ब्रह्म है ऐसा भी कहा है तो रस ही आनन्द है और आनन्द ही ब्रह्म है। ब्रह्म की रसरूपता का अन्य पुराणों में वर्णन नहीं है, इसीलिए श्रीमद्भागवत् सबसे अंत में कही गयी जो रसमय है, देखो ! वृक्ष में फल सबसे पीछे आता है। फल क्या है? पेड़ का सार ही फल होता है और वह फल रस रूप होता है। रस न पत्तों में होता है, न जड़ में होता है, न तनों आदि में होता है, रस तो फल में होता है। इसलिए वेद रूपी वृक्ष का यह श्रीमद्भागवत् फल है, कैसा फल? पका हुआ फल और शुक (तोता) उसी फल में चोंच मारता है, जिसमें रस होता है।

मधुमक्खी की आँखों में तीन हजार लेंस होते हैं। वह उड़ते-उड़ते देख लेती है कि किस पुष्प में रस है? उसी प्रकार चींटी है, अगर कहीं भी मीठा पदार्थ रख दो, चींटी वहाँ तुरन्त पहुँच जायेगी, यह सब उनकी प्रकृति के कारण होता है। उसी तरह तोता उसी फल में चोंच मारता है जिसमें रस होता है। **'शुकमुखादमृतद्रवसंयुतम्'** शुक ने इसे चाखा और प्रमाणित किया कि यह ग्रन्थ रस रूप है। इसलिए इसको पियो, कैसे? **'कर्णपुटैः पिबन्त्यः'** कर्णपुटों में भर-भरकर इसे पियो। कब तक पियें? जब तक इस शरीर में प्राण हैं; जीवनभर पीते रहो। इसको एक बार पीने के बाद यह छूटता ही नहीं है।

कृष्ण चरित्र ब्रह्म की रसरूपता है, भगवान् के अनेकावतार हुए लेकिन उन अवतारों में ऐसी रस रूपता प्रकट नहीं हुई जैसी कृष्णावतार में हुई। सभी अवतारों के वरदान प्राप्त परिकर ही यहाँ कृष्णावतार में गोपी बने; क्योंकि ब्रह्म की रस रूपता पहली बार कृष्णावतार में प्रगट हुई है। यहाँ तक कि वेद की श्रुतियाँ भी

गोपियाँ बनकर आयीं। श्रुतियाँ अनादिकाल से भगवान् की ऐश्वर्यपूर्ण स्तुति कर रही थीं परन्तु अभी तक उन्हें ब्रह्म की रस रूपता नहीं मिली थी, अतः उन्होंने तप किया। वामन पुराण, अग्निपुराण, गर्गसंहिता आदि कई शास्त्रों में इसका वर्णन मिलता है। भागवत में भी कहा है –

"तद्दर्शनाह्लादविधूतहृद्रुजो मनोरथान्तं श्रुतयो यथा ययुः ।"

(भा. १०/३२/१३)

श्रुतियों ने जो वर माँगा था ब्रह्म की रसरूपता का अनुभव, वह उन्हें यहीं कृष्णावतार में प्राप्त हुआ, वह इतना कृपामय है कि लाखों वर्ष समाधि लगाकर ऋषि-मुनि, योगी जिसका अनुभव करते हैं, वह उस गति को अपने शत्रुओं को भी दे देता है। इसलिए श्रुतियों को भी रसरूपता यहीं कृष्णावतार में मिली।

'रस्यते आस्वाद्यते इति रसः'
'रसयति आस्वादयति इति रसः'

जो रस का अनुभव करता है, वह है ब्रह्म। वह आस्वाद्य भी है और आस्वादक भी है अर्थात् वह स्वयं रस रूप है और उसका आस्वादन करने वाला आस्वादक भी वही है।

"रसो वै सः । रसं ह्येवायं लब्ध्वाऽऽनन्दी भवति ।"

(तैत्तरीय. २/७)

जीव को अब तक आनन्द नहीं मिला था किन्तु कृष्ण रस प्राप्ति के बाद सदा के लिए वह आनन्दमय हो गया।

ब्रह्म अनन्त है तो रस भी अनन्त है परन्तु हम जैसे संकीर्ण बुद्धि वाले लोग उसको संकीर्ण बना लेते हैं, क्योंकि जैसी भावना होती है, वैसी ही प्राप्ति होती है; आरम्भ से ही यही नियम चला आ रहा है। उद्धव जी ने श्रीमद्भागवत में भगवान् से प्रश्न किया –

प्रश्न – ब्रह्म एक है, परन्तु उसकी प्राप्ति के मार्ग अनेक क्यों हैं? (भागवत ११/१४/१)

भगवान् बोले – इस संसार में जो वस्तु आती है, एक दिन वह नष्ट हो जाती है। इसी तरह वेदवाणी भी नष्ट हो गयी, सबसे पहले वेद का मैंने ब्रह्मा को उपदेश दिया, ब्रह्मा ने स्वायम्भुव मनु को और उन्होंने सप्त प्रजापति-महर्षियों को, इसी तरह पीढ़ी-दर-पीढ़ी चलता गया।

जैसे – एक अध्यापक बहुत से बच्चों को पढ़ाता है, कोई टॉप करता है, कोई केवल पास होता है, कोई फेल होता है, यह सब प्रकृति वैचित्र्य के कारण हुआ –

एवं प्रकृतिवैचित्र्याद् भिद्यन्ते मतयो नृणाम्।
पारम्पर्येण केषाञ्चित् पाखण्डमतयोऽपरे॥

(भा. ११/१४/८)

उसी तरह ब्रह्म रस रूप है, उसकी रस रूपता को अपनी-अपनी प्रकृति अर्थात् स्वभावानुसार लोगों ने वर्णन किया। किसी ने कहा – स्वकीया रस है, किसी ने कहा – परकीया ही रस है, किसी ने कहा – इन दोनों से भी ऊपर नित्य दाम्पत्य रस है, तो सभी सत्य हैं क्योंकि भगवान् ने सब प्रकार की लीलायें की हैं;

एवं शशाङ्कांशुविराजिता निशाः
स सत्यकामोऽनुरताबलागणः ।
सिषेव आत्मन्यवरुद्धसौरतः
सर्वाः शरत्काव्यकथारसाश्रयाः॥

(भा. १०/३३/२६)

अब उसमें जो लोग विवाद करते हैं, वह असंगत है। साहित्य अनन्त है परन्तु सभी ग्रन्थों में भागवत ही ब्रह्म की रस रूपता का प्रतिपादक ग्रन्थ है, क्योंकि यह फल रूप है, रस फल में ही होता है। वेद एक बड़ा वृक्ष है, उसकी अनन्त शाखाएँ हैं परन्तु उसका फल है 'श्रीमद्भागवत्'। इसीलिए यह रसमय ग्रन्थ है। एक विचित्र बात है कि कृष्ण लीला कहते तो सभी हैं, बहुत से कथावाचक हैं, व्यास हैं लेकिन भागवत कथा कहते समय कथावाचक लोग

चुटकुला क्यों कहते हैं? क्योंकि उनके हृदय में रस नहीं है, जब हृदय में रस होगा तभी तो कथा कहेंगे। इसी को भागवत में पृथु जी ने कहा –

स उत्तमश्लोक महन्मुखच्युतो भवत्पदाम्भोजसुधाकणानिलः ।
स्मृतिं पुनर्विस्मृततत्त्ववर्त्मनां कुयोगिनां नो वितरत्यलं वरैः ॥

(भा. ४/२०/२५)

जब महापुरुष (भक्त) भगवान् की कथा-लीला कहते हैं तब उनके कहने से जीव के हृदय में रस आता है, महापुरुषों के मुख से जो हवा निकलती है उससे जीव को स्मृति मिलती है, जिसे ध्रुवास्मृति कहते हैं। वह ध्रुवास्मृति अखण्ड भगवान् का स्मरण कराएगी।

वासना रहित वाणी से होगा प्रभु की ओर प्रवाह

हमलोग कुयोगी (भटके हुए योगी) हैं, कृष्ण कथा तो कहते हैं परन्तु किसी को धन चाहिए, किसी को मान-सम्मान चाहिए, किसी को भोग पदार्थ चाहिए, कोई वाद-विवाद (तर्क-कुतर्कों) में उलझा है, तो इन कुयोगियों को जब सच्चे महापुरुष मिल जाते हैं तब उनको ध्रुवास्मृति प्राप्त हो जाती है अन्यथा कभी नहीं मिलेगी। इसको प्रह्लाद जी ने कहा –

मतिर्न कृष्णे परतः स्वतो वा मिथोऽभिपद्येत गृहव्रतानाम् ।
अदान्तगोभिर्विशतां तमिस्रं पुनः पुनश्चर्वितचर्वणानाम् ॥

(भा. ७/५/३०)

अगर हृदय में वासनाएँ हैं तो तुम्हारी कृष्ण में मति कभी नहीं लगेगी, न स्वतः तुममें लगाने की ताकत है और न किसी के पास जाने से लगेगी क्योंकि तुम सांसारिक भोगों में डूब रहे हो। 'गृहव्रतानाम्' गृहव्रत क्या है? भोग, धन-सम्पत्ति, देहासक्ति, गृहासक्ति – यह सब गृहव्रत है; तो ***भोग-पैसा चाहने वाले के मन में कृष्ण कभी नहीं आएँगे*** चाहे वह कितनी भी कथा कह ले, मान-सम्मान चाहने वाले के हृदय में कृष्ण नहीं हैं। कृष्ण तो तभी आएँगे –

अपहतसकलैषणामलात्मन्यविरतमेधितभावनोपहूतः ।
निजजनवशगत्वमात्मनोऽयन्न सरति छिद्रवदक्षरः सतां हि ॥

(भा. ४/३१/२०)

जब समस्त ऐषणायें चली जाएँगी तब तुमको सच्चा भाव पैदा होगा। इस बात को गोस्वामी तुलसीदास जी ने भी लिखा है –

छूटी त्रिबिधि ईषना गाढ़ी ।
एक लालसा उर अति बाढ़ी ॥

(रा.च.मा.उत्तर. ११०)

अगर ऐषणायें हैं तो साधु-व्यास, धर्माचार्य बनकर भी तिकड़म लगाओगे, कैसे पैसा आये? कैसे भोग्य पदार्थ आवें? आज लोग कथा क्यों कहते हैं? क्योंकि कथा कहने में बड़ा फायदा है। लड्डू-पेड़ा, मान-सम्मान, पैसा मिलेगा। अधिकतर जो लोग कथा सीखते हैं, वह ऐषणाओं से कहते हैं। जब ऐषणायें चली जाएँगी तब भगवत्प्राप्ति की उत्कण्ठा (लालसा) बढ़ेगी। जब तक ऐषणायें हैं, 'एषणायें' माने प्यास। भोगों की प्यास, मान-प्रतिष्ठा की प्यास, धन-सम्पत्ति की प्यास, तब तक सच्ची भावनायें पैदा नहीं होंगी। चाहे वेश बदल लो, लाल कपड़ा, पीला कपड़ा पहन लो, इससे कुछ नहीं होगा। कबीरदास जी ने कहा –

मन न रंगाये रंगाये जोगी कपड़ा ।
कनवा फड़ैले बाला लटकैले दढ़िया बढ़ैले जोगी होइ गये बकरा ॥
माथा मुड़ैले कपड़ा रंगैले गीता बांच जोगी होइ गैले लफड़ा ।
कहैं कबीर सुनो भाई साधो जम तर बचबा बधिक जैहे पकड़ा ॥

जब ऐषणायें चली जाएँगी, तब तुम बुलाओगे तो भगवान् दौड़े-दौड़े चले आएँगे, फिर तुम धक्का देकर भी बाहर निकालोगे तो भी नहीं जाएँगे और तुम्हारे वश में हो जाएँगे। हम साधु बनकर भी पैसा इकट्ठा करते हैं क्योंकि विषयों की ओर हमारी मति (बुद्धि) का आकर्षण हो गया। इसलिए प्रह्लाद जी ने कहा – भगवान् में मति का विकर्षण तो तभी होगा जब किसी महापुरुष की शरण में जाओगे, नहीं तो चाहे कथा कहो, चाहे भाषण दो तुम्हारी मति भगवान् के चरणों को नहीं छुयेगी, नहीं तो केवल टेप रिकॉर्डर की तरह बजते रहोगे, वह मशीन है उसमें सच्चा हृदय नहीं होता। सच्चे हृदय की पहिचान है उसमें हर समय भगवान् रहते हैं। निष्किञ्चन कौन है? जिसको कुछ नहीं चाहिए, कोई इच्छा नहीं, कोई वासना नहीं, उससे कथा सुनो। अन्यथा गाने वाले कलाकार भी कई लाख रूपये लेते हैं, क्या उनके गाने से कृष्ण मिल जाएँगे? तुलसी, सूर, मीरा आदि महापुरुष हुए, उन्होंने जो गाया उसको

अभी भी लोग गाते हैं। उससे लोगों को रस मिलता है क्योंकि उनके हृदय में एषणायें नहीं थीं। इसीलिये कथा उसी से सुनो जो 'निःस्पृह' हो, जिसे शरीर की आवश्यकताओं की पूर्त्ति की भी कामना नहीं हो। गीता में कहा गया है –

विहाय कामान्यः सर्वान्पुमांश्चरति निःस्पृहः ।
निर्ममो निरहंकारः स शान्तिमधिगच्छति ॥

(गी. २/७१)

कामना तो छूट जाती हैं पर 'स्पृहा' बनी रहती है, (शरीर की आवश्यकतायों की पूर्त्ति की इच्छा, जैसे – खाना, पहनना आदि) अगर स्पृहा नहीं है तो तुम **'एषा ब्राह्मीस्थितिः पार्थ'** ब्रह्म रूप हो जाओगे। भागवत माहात्म्य में भी बताया गया है – 'वक्ता कैसा होना चाहिए?

विरक्तो वैष्णवो विप्रो वेदशास्त्रविशुद्धिकृत् ।
दृष्टान्तकुशलो धीरो वक्ता कार्योऽतिनिःस्पृहः ॥

(भा. माहा. ६/२०)

वक्ता को अति निःस्पृह होना चाहिए, इसी को रामायण में कहा गया है –

जाहि न चाहिअ कबहुँ कछु तुम्ह सन सहज सनेहु ।
बसहु निरन्तर तासु मन सो राउर निज गेहु ॥

(रा.च.मा.अयो. १३१)

परन्तु ऐसा महापुरुष संसार में मिलना बहुत कठिन है, अगर अति निःस्पृह कोई मिल जाए और उसके एक लव का भी सत्संग मिल जाये तो इतने से तुम्हें भक्ति मिल जायेगी –

तात स्वर्ग अपबर्ग सुख धरिअ तुला एक अंग ।
तूल न ताहि सकल मिलि जो सुख लव सतसंग ॥

(रा.च.मा.सुन्दर. ४)

ऐसे महापुरुष के एक क्षण के संग से तुम्हें भक्ति मिल जायेगी, कृष्ण प्रेम मिल जायेगा परन्तु ऐसे महापुरुष का मिलना बड़ा दुर्लभ है।

दुर्लभो मानुषो देहो देहिनां क्षणभङ्गुरः ।
तत्रापि दुर्लभं मन्ये वैकुण्ठप्रियदर्शनम् ॥

(भा. ११/२/२९)

पहले तो यह मनुष्य शरीर मिलना ही बड़ा दुर्लभ है, अगर भगवत्कृपा से मिल भी जाए तो उसके बाद भी कब नष्ट हो जाए, कब मृत्यु हो जाए कुछ पता नहीं, इससे भी दुर्लभ है भगवान् के प्यारे भक्तों-संतों का संग। अगर वह मिल गया तो उसके सामने फिर यह स्वर्ग, मोक्ष आदि भी तुच्छ हैं –

तुलयाम लवेनापि न स्वर्गं नापुनर्भवम् ।
भगवत्सङ्गिसङ्गस्य मर्त्यानां किमुताशिषः ॥

(भा. १/१८/१३)

अगर कृष्ण भक्तों का संग मिल जाये तो मोक्ष से भी ज्यादा उपलब्धि समझो। यही कारण है आज अनेकों (हजारों) वक्ता घूम रहे हैं लेकिन कहीं भी प्रेम रस का संचार नहीं है। भागवत कथा कहने वाले चुटकुले कहते हैं क्योंकि उनके अन्दर कृष्ण रस नहीं है। बस यही देखते हैं कि भीड़ कैसे जुटे, लोग कैसे प्रसन्न हों? कैसे रंग जमे? इसलिए सबसे कठिन है कृष्ण रस कहना, अगर कहेंगे भी तो बनावटी ढंग से, उसके सुनने से वह दिव्यता का अनुभव नहीं होगा, प्राकृत जैसा लगेगा। रास पंचाध्यायी में प्रथम श्लोक में कहा है –

भगवानपि ता रात्रीः शरदोत्फुल्लमल्लिकाः ।
वीक्ष्य रन्तुं मनश्चक्रे योगमायामुपाश्रितः ॥

(भा. १०/२९/१)

इस श्लोक में 'भगवान्' शब्द आया है, यह वह रस है इसके लिए भगवान् भी आते हैं। इसलिए शुकदेवजी ने भागवत में कहा – कथा

सुनो लेकिन भक्त के मुख से, जो भक्ति विहीन है वह तो टेप रिकॉर्डर की तरह बोल रहा है। जब किसी भक्त से कथा सुनोगे तो उसके मुख से जो हवा निकलेगी, कब निकलेगी? जब उनके हृदय में भगवान् के चरणकमलों का रस होगा तो उससे तुमको ध्रुवास्मृति की प्राप्ति होगी। लेकिन जिसके हृदय में पैसा है, भोग है, वासनायें हैं कि चिड़िया कैसे फँसे? इस तरह ऐसे लोगों से जो कथा सुनता है, वह भी सोचता है कि हम भी चिड़ी मार बन जाएँ क्योंकि उसकी वासनाओं की गंध असर कर गई। देखो, सर्प जहाँ रहता है, जिस बिल में रहता है उस बिल की मिट्टी भी बिषैली हो जाती है क्योंकि सर्प फुस्कार मारता है तो गर्म विषैली हवा निकलती है, उससे आस-पास की जगह भी विषैली हो जाती है, उसी प्रकार जिसके हृदय में कामनाएँ-वासनाएँ हैं, उसके शब्दों में भी वासनाओं की गंध आयेगी। जिसका हृदय वासना रहित है वह जब कथा कहेगा तो उससे कृष्ण रस की अनुभूति होगी।

आज भागवत के नाम पर गद्दी पर वक्ता लोग बैठ जाते हैं और चुटकुले कहते हैं, कृष्ण रस कहना बहुत कठिन है, उसको हास्य रस बना लेते हैं इसलिए वह गम्भीरता नहीं रहती, जैसे ब्रह्मा जी कहते हैं –

अहो भाग्यमहो भाग्यं नन्दगोपव्रजौकसाम् ।
यन्मित्रं परमानन्दं पूर्णं ब्रह्म सनातनम् ॥

(भा. १०/१४/३२)

अरे ! इन ब्रजवासियों का सौभाग्य तो देखो, परमानन्द, ब्रह्म, सच्चिदानन्द भगवान् इनका मित्र बन गया।

इस गहराई में घुसकर नहीं बोलते हैं, इस गहराई में घुसकर बोलो – पूर्णकाम, आप्तकाम भगवान् गोपियों के प्रेमवश होकर नाच रहा है। नहीं तो एक सिनेमा का कलाकार भी हमसे अच्छा गाता है, बोलता है लेकिन कलाकार के हृदय में भक्ति रस नहीं रहता। वह

कला को प्रस्तुत कर रहा है लेकिन उसके हृदय में एषणायें हैं। जहाँ एषणायें हैं वहाँ रस कहाँ से आयेगा, इसीलिए रूप गोस्वामी जी ने भक्तिरसामृतसिन्धु में भक्ति की परिभाषा में यही लिखा –

अन्याभिलाषिता शून्यं ज्ञानकर्माद्यना व्रतम् ।
आनुकूल्येन कृष्णानुशीलनं भक्तिरुत्तमा ॥

(भक्तिरसामृतसिन्धु)

अगर कृष्णरस, कृष्ण प्रेम, भक्ति चाहिए तो पहले समस्त अभिलाषाओं से शून्य हो जाओ और दिन-रात कृष्ण में मन, इन्द्रियाँ लगी रहें। भगवान् में स्वाभाविक प्रवृत्ति होना ही भक्ति है। कपिल भगवान् ने कहा –

देवानां गुणलिङ्गानामानुश्रविककर्मणाम् ।
सत्त्व एवैकमनसो वृत्तिः स्वाभाविकी तु या ॥

(भा. ३/२५/३२)

अतः कृष्ण चरित्र कहना बहुत कठिन है, जब हृदय में रस हो, भक्ति हो, तभी कृष्ण चरित्र कहने का अधिकार है। यह एक दुर्लभ ही नहीं दुर्लभतम वस्तु है। इसलिए सच्चे सन्तों-महापुरुषों की निष्काम भाव से शरण ग्रहण करो, उसी से कल्याण होगा, उनकी चरणरज में स्नान करो **'विना महत्पादरजोऽभिषेकम्'** नहीं तो महापुरुषों-भक्तों की शरण में गए बिना न भक्ति मिलेगी, न प्रेम मिलेगा और न ही कृष्ण रस मिलेगा। महापुरुष की पहचान क्या है? उनकी शरीर से, कपड़े से पहचान नहीं होती कि अच्छा शरीर है, उम्र ज्यादा है, लाल कपड़ा है कि पीला कपड़ा है। उनकी तो एकमात्र पहचान है –

यत्रोत्तमश्लोकगुणानुवादः प्रस्तूयते ग्राम्यकथाविघातः ।
निषेव्यमाणोऽनुदिनं मुमुक्षोर्मतिं सतीं यच्छति वासुदेवे ॥

(भा. ५/१२/१३)

जहाँ केवल हर समय उत्तमश्लोक भगवान् की चर्चा है, ग्राम्य कथा अर्थात् संसारी चर्चा नहीं हैं वहाँ चले जाओ, अपने-आप

तुम्हारी भगवान् में बुद्धि लग जायेगी, अपने-आप कृष्ण-कथा में रस आने लगेगा।

अर्थ के रूप में अनर्थ

धन को किसी भी इन्द्रिय से स्पर्श न किया जाए तब इसका चमत्कार जीवन में दिखाई पड़ता है। श्रीमद्भागवत् में स्वयं भगवान् श्रीकृष्ण ने कहा कि धन रखने से पन्द्रह दोष आ जाते हैं लेकिन आज समाज में कोई भी भगवान् की आज्ञा का अनुकरण नहीं कर रहा है, चाहे वह राजा है, चाहे सन्यासी है, चाहे कोई गृहस्थी, यहाँ तक कि जो धर्माचार्य हैं – संसार को धर्म का उपदेश करते हैं, वे स्वयं इस मार्ग पर नहीं चल रहे हैं, वे भी धन (पैसे) का संग्रह करते हैं, लौकिक पदार्थों का आश्रय करते हैं क्योंकि वे समझते हैं – हमारे पास ज्यादा धन-संपत्ति होगी तो समाज में हमारी बड़ी इज्जत होगी, प्रभाव होगा, नाम होगा, लोग हमारा सम्मान करेंगे। आज संसार में हर आदमी अपना नाम चाहता है, नाम के लिए पागल है लेकिन जब नाम चाहने की कामना छोड़ोगे तब भगवत्कृपा मिलेगी, अगर नाम चाहोगे तो कुछ नहीं मिलेगा।

हमारा पतन कब होता है? समाज हमको नहीं गिरा सकता, गिरते हैं तो हम अपनी भावनाओं से, धन संग्रह से भावनाएँ दूषित हो जाती हैं। इसलिए भगवान् ने कहा – धन को किसी भी इन्द्रिय से ग्रहण नहीं करो, न धन की ओर देखो, न उसकी चर्चा सुनो, न उसका स्पर्श करो और न ही किसी धन के नशे में दुर्मदान्ध मनुष्य का संग करो क्योंकि **'सङ्गात्सञ्जायते कामः'** दोष संग के प्रभाव से आता है। इसी बात को श्रीमद्भागवत् में ऋषभ भगवान् ने कहा है कि कोई व्यक्ति जन्म से काम सीखकर नहीं आता, कोई जुआ खेलना, मदिरा-पान करना जन्म से सीखकर नहीं आता, मनुष्य भोग सीखता है किसी भोगी के संग से। जिस प्रकार भोग भोगी के संग से सीखता है, उसी प्रकार भक्ति भी किसी भक्त का संग करने से आती है लेकिन इन दोनों में अंतर है, भक्त-सन्त का संग करोगे

तो भवसागर से पार (मुक्त) हो जाओगे और विषयी (भोगी) का संग करोगे तो सीधे नरक में, आसुरी योनियों में, अनन्तकाल के लिए अन्धकार में चले जाओगे।

महत्सेवां द्वारमाहुर्विमुक्तेस्तमोद्वारं योषितां सङ्गिसङ्गम् ॥

(भा. ५/५/२)

ऋषभ भगवान् बोले – स्त्री संगियों का संग मत करो, मनुष्य काम सीखता है किसी कामी के संग से, कोई स्त्री किसी पुरुष को काम नहीं सिखाती, स्त्री भोगी काम सिखाता है। कोई जन्म से, पेट से भोग सीखकर नहीं आता। इसलिए स्त्री संगियों का, भोगियों का संग मत करो। वैसे ही पैसे की चर्चा भी मत सुनो, अगर कान से भी सुनोगे तो पैसे की इच्छा (कामना) पैदा होगी, इसलिए पैसे को दूर से छोड़ो, न देखो, न सुनो और न स्पर्श करो अर्थात् किसी भी इन्द्रिय से ग्रहण मत करो। धन से ये पन्द्रह अनर्थ आते हैं –

स्तेयं हिंसानृतं दम्भः कामः क्रोधः स्मयो मदः ।
भेदो वैरमविश्वासः संस्पर्धा व्यसनानि च ॥
एते पञ्चदशानर्था ह्यर्थमूला मता नृणाम् ।
तस्मादनर्थमर्थाख्यं श्रेयोऽर्थी दूरतस्त्यजेत् ॥

(भा. ११/२३/१८, १९)

१. स्तेयम् (छुपाना) – पैसा आयेगा तो छिपाकर रखना पड़ेगा क्योंकि कोई चुरा न ले, किसी से छुपाना 'स्तेय' है। पैसा आते ही पहला दुर्गुण आ गया।

२. हिंसा (हिंसा) – पैसे के पीछे मनुष्य कत्ल करता है, डाका डालता है, लूट-पाट करता है, हिंसा करता है। कोई गरीब भूखा मर रहा और हमारे पास पैसा है, हम दे नहीं रहे तो ये हिंसा है। इसलिए धन आया तो हिंसा करनी पड़ती है।

३. अनृतम् (झूठ बोलना) – किसी ने पूछा पैसा है तो छिपा लिया, पॉकेट में रख लिया, झूठ बोल दिया। पैसे के पीछे स्त्री पति

से झूठ बोलती है, बाप बेटा से झूठ बोलता है, शिष्य गुरु से झूठ बोलता है। कोई अपना बैंक का खाता (bank account) नहीं बताता क्योंकि कहीं कोई चंदा माँगने न आ जाए। इसलिए पैसे के कारण झूठ बोलना पड़ता है।

४. दम्भः (दिखावापन, पाखण्ड) – पैसे वाले बड़े बन-ठन के चलते हैं, हर व्यक्ति बड़ा आदमी बनता है, सारा संसार दम्भ में डूब रहा है, घर में खाने को रोटी नहीं लेकिन बड़े आदमी बनते हैं, कहीं शादी-ब्याह में जा रहे हैं तो इसकी घड़ी माँगी, उसके कपड़े माँगे और बन-ठनकर पैसे वाले बनकर जाते हैं। हमलोग साधु, कथावाचक हैं और गले में स्वर्ण की जंजीर, हाथों में अँगूठी पहनते हैं जबकि शास्त्रों में इसका निषेध किया है कि अशुभ वेष धर्माचार्य को धारण नहीं करना चाहिए। यह बात तुलसीदास जी ने रामायण में लिखी है –

असुभ बेष भूषन धरें भच्छाभच्छ जे खाहिं ।
तेइ जोगी तेइ सिद्ध नर पूज्य ते कलिजुग माहिं ॥

(रा.च.मा.उत्तर. ९८)

अतः बड़ा बनने के लिए मनुष्य दम्भ करता है।

५. कामः (इच्छा) – हमको कहीं से कुछ धन मिल गया तो सोचते हैं कि इसको कहाँ खर्च करें, इसलिए पैसे के हाथ में आते ही इच्छायें पैदा हो जाती है।

६. क्रोधः (गुस्सा) – कोई पैसा मांगने आया और तुरन्त क्रोध आ जाता है। बाप बेटे पर क्रोध करता है – 'बार-बार माँगने आता है, कहाँ से दें पैसा।' कोई पैसा ले जाता है फिर समय पर वापस नहीं देता तो क्रोध आता है, कहीं गलती से खो गया तो क्रोध आता है।

७ स्मयः (ऐंठ) – कोई गरीब पैसा माँगने आया तो उससे इठलाकर ऐंठ के साथ बात करते हैं।

८. मदः (नशा) – जैसे भाँग या मदिरा थोड़ी सी पी लो तो उसका नशा हो जाता है वैसे ही जब पैसा आता है तो नशा हो जाता है, जैसे रूपवती स्त्री को रूप का नशा रहता है, वैसे ही जब पैसा आता है तो अवश्य मद हो जाता है।

९. भेदः (भेदबुद्धि) – पैसे के पीछे भाई-भाई, बाप-बेटा, स्त्री-पति में भेद (बँटवारा) होता है; घर का बँटवारा, जमीन-जायदाद का बँटवारा। आज सारे संसार में फूट का कारण एकमात्र पैसा है। देश-देश में भेद है, बाप-बेटे में भेद है, अलग-अलग घर बनाते हैं, गुरु-शिष्य में भेद है, गुरु से शिष्य अलग आश्रम बनाता है।

१०. वैरम् (वैर) – सबसे ज्यादा शत्रुता पैसे के कारण होती है, पैसे के कारण अपने सगे-सम्बन्धियों से वैर हो जाता है।

११. अविश्वासः (अविश्वास) – जब पैसा चोरी हो जाता है या कहीं गुम हो जाता है तो कोई अच्छा से अच्छा व्यक्ति है उस पर भी अविश्वास हो जाता है, फिर वह सब पर शंका करता है, यहाँ तक कि माँ-बाप पर भी उसका अविश्वास हो जाता है।

१२. संस्पर्धा (स्पर्धा, होड़) – एक व्यापारी दूसरे व्यापारी से होड़ करता है। इस होड़ के कारण ही सम्प्रदायों में भेद बना है, यह संस्पर्धा छिपी रहती है कि हमारे प्रभाव में लोग ज्यादा आवें।

'व्यसनानि' – इसमें तीन व्यसन आते हैं –

१३. लाम्पट्य (भोग) – जिसके पास पैसा होता है उसी पर वैश्याएँ आकर्षित होती हैं तभी वह भोग भोगता है।

१४. मदिरा (मद्यपान) – जब पैसा रहता है तभी मनुष्य मदिरा पान करता है, गुटखा-तम्बाकू खाता है, अगर पैसा नहीं होगा तो कहाँ से खायेगा-पियेगा।

१५. द्यूत (जुआ) – मनुष्य जुआ तभी खेलता है जब पास में पैसा होता है।

अतः ये पंद्रह अनर्थ पैसे को देखने, स्पर्श करने से ही आ जाते हैं। इसका नाम अर्थ है लेकिन है एकदम पूरा अनर्थ। इसलिए जो कल्याण चाहता है, कल्याण का इच्छुक है, उसे धन दूर से ही छोड़ देना चाहिए।

आसक्ति रहित कर्म से नहीं होगा दोष

अगर कोई शंका करे कि बिना पैसे के तो आजकल कुछ भी नहीं होता, हर काम में पैसा चाहिए। जब पैसे का स्पर्श नहीं करेंगे तो कैसे काम चलेगा?

इसका उत्तर भगवान् ने गीता में दिया –

सन्न्यासं कर्मणां कृष्ण पुनर्योगं च शंससि ।
यच्छ्रेय एतयोरेकं तन्मे ब्रूहि सुनिश्चितम् ॥

(गी. ५/१)

अर्जुन ने पूछा – हे प्रभु ! आपने कर्म सन्यास (कर्म सन्यास माने विरक्त बन जाना, धन को नहीं छूना) का भी वर्णन किया है और कर्मयोग का भी; अतः इन दोनों में बड़ा कौन है? भगवान् अर्जुन की चतुरता समझ गए कि हमसे कर्म सन्यास का वर्णन सुन रहा है और अगर कर्मों से सन्यास ले लेगा तो महाभारत कौन लड़ेगा? तब भगवान् ने कहा कि कर्म सन्यास से कर्मयोग बड़ा है –

सन्न्यासः कर्मयोगश्च निःश्रेयसकरावुभौ ।
तयोस्तु कर्मसन्न्यासात्कर्मयोगो विशिष्यते ॥

(गी. ५/२)

अब शंका हुई अगर कर्मयोग बड़ा है तो जब कर्म करेंगे तो धन अवश्य छूना पड़ेगा फिर पंद्रह दोष भी अवश्य आएँगे, तब भगवान् बोले – नहीं, अगर कर्मफल त्यागकर कर्म करोगे तो दोष नहीं आएँगे –

अनाश्रितः कर्मफलं कार्यं कर्म करोति यः ।
स सन्न्यासी च योगी च न निरग्निर्न चाक्रियः ॥

(गी. ६/१)

इसलिए कर्मत्यागी नहीं बनो, कर्म करो लेकिन फलों में आसक्ति मत करो। लाल-पीले कपड़ा वाला सन्यासी नहीं है,

सच्चा सन्यासी वह है जो नियत कर्म करता है, कर्म से भागता नहीं है लेकिन कर्मफलों की आसक्ति छोड़कर कर्म करता है। जब कर्मफल में आसक्ति नहीं होगी तो कोई दोष नहीं लगेगा।

महाकवि कालिदास की एक पंक्ति है जो गीता का सार है, उन्होंने लिखा है – **"ज्ञातास्वादो विवृतजघनां को विहातुं समर्थः।"** जिसको भोग का स्वाद मिल चुका है, उसको 'ज्ञातास्वाद 'कहते हैं और ऐसे भोगी के पास कोई एकदम नग्न स्त्री आ जाए तो वह कैसे छोड़ सकता है अर्थात् नहीं छोड़ सकता है; लेकिन ऐसी परिस्थिति में जब विकार का हेतु सामने है और उसे छोड़ देता है तो वह सच्चा धीर है।

"विकारहेतौ सति विक्रियन्ते
येषां न चेतांसि त एव धीराः।"

(कुमारसंभव १/५९)

विकार का कारण होते हुए भी विकार पैदा नहीं हो रहा है, वह धीर है। पास में स्त्री है लेकिन उसके मन में विकार नहीं है तो वह स्त्री दर्शन-स्पर्श न करने वाले से बहुत आगे चला गया है। वह धन को न छूने वाले से बड़ा है जिसके पास धन होते हुए भी विकार नहीं है अर्थात् विकार का हेतु होने पर भी विकार नहीं आ रहा है। बहुत से लोग कहते हैं – हम स्त्रियों का मुख नहीं देखते, ठीक है, स्त्री दर्शन अच्छा नहीं है लेकिन इससे भी ऊँची स्थिति है जो 'दुर्गा सप्तशती' में कहा गया है –

विद्या समस्तास्तव देवी भेदा
स्त्रिया समस्तासकला जगत्सु।
त्वयैकया पूरितमम्बयैतत्
कातेस्तुतिस्तव्य परा परोक्तिः॥

(दुर्गा सप्तशती ११/६)

सभी विद्यायें देवी रूप हैं, सभी स्त्रियाँ देवी रूप हैं, जो ऐसा भाव बना लेता है तो फिर उसे स्तुति-भजन करने की जरूरत नहीं

है, वह बिना भजन के ही सिद्ध हो जायेगा। इसी बात को भगवान् ने गीता में कहा –

मनः प्रसादः सौम्यत्वं मौनमात्मविनिग्रहः ।
भावसंशुद्धिरित्येतत्तपो मानसमुच्यते ॥

(गी. १७/१६)

सबसे बड़ा मानसिक तप है, मन निर्मल रहे भले ही हजार स्त्रियाँ हैं और उनका स्पर्श भी हो रहा है परन्तु मन निर्मल, शीतल है, भाव शुद्ध है, मन में कोई विकार उत्पन्न नहीं हो रहा, यह मानसिक तप है। जब भगवान् की विशेष कृपा होती है तभी ऐसा होता है।

महत्-दर्शन सर्वमङ्गल मूल

नाहं वसामि वैकुण्ठे योगिनां हृदये न च ।
मद्भक्ता यत्र गायन्ति तत्र तिष्ठामि नारद ॥

भगवान् कहते हैं – मैं योगियों के हृदय में नहीं रहता हूँ और न ही वैकुण्ठ में रहता हूँ, जहाँ मेरे भक्त गाते हैं, मैं वहीं रहता हूँ। आदिपुराण में भगवान् अर्जुन से कहते हैं – जो मेरे नाम को गाता है और नाचता है, मैं सत्य कहता हूँ – मैं उसके हाथों बिक जाता हूँ। वह भक्त मुझे खरीद लेता है। मीरा जी ने भी कहा है –

नाच नाच पिय रसिक रिझाऊँ प्रेमी जन को जाँचूंगी ।
पिय के पलगा जा पौढ़ूँगी मीरा हरि रंग राचूँगी ॥

मीरा ने जैसा कहा वैसा ही हुआ – मीराबाई श्यामसुन्दर के विग्रह में लीन हो गयी, मरी नहीं। जहाँ भगवद्भक्त गाते और नाचते हैं तो उनके दर्शन मात्र से पाप नष्ट हो जाते हैं। भागवत में स्वयं भगवान् ने यमलार्जुन के उद्धार के समय कहा –

साधूनां समचित्तानां मुकुन्दचरणैषिणाम् ।
उपेक्ष्यैः किं धनस्तम्भैरसद्भिरसदाश्रयैः ॥

(भा. १०/१०/१८)

यमलार्जुन का नाम पहले नलकूबर और मणिग्रीव था। ये दोनों कुबेर के बेटे थे, जो धन के स्वामी हैं। इनमें धन का मद था, बहुत सुन्दर थे तो रुप का मद था, जवान थे तो यौवन का मद था, ऊपर से मदिरा भी पी रखी थी, तो धन मद, रूप मद, यौवन मद, बल मद, मदिरा का मद, पाँचों नशों में चूर थे। इस कारण नग्न होकर देवांगनाओं के साथ जलक्रीड़ा कर रहे थे। उधर से नारद जी निकले, उन्हें देखकर देवांगनाओं ने तो लज्जा के कारण कपड़े पहन लिए परन्तु मद में चूर होने के कारण ये कपड़ा पहनने नहीं गये, नग्न ही नहाते रहे, नारद जी ने देखा कि ये अनन्तकाल के

लिए नरक में जाने की तैयारी कर रहे हैं क्योंकि भोग मनुष्य को नरक ले जाता है।

अनेकचित्तविभ्रान्ता मोहजालसमावृताः।
प्रसक्ताः कामभोगेषु पतन्ति नरकेऽशुचौ ॥

(गी. १६/१६)

भोग में जिसकी बुद्धि निमग्न है, वे इस मल-मूत्र युक्त शरीर में जाकर कीड़ा बनते हैं। जितने गटर के कीड़ें हैं, गटर अर्थात् मल-मूत्र का गन्दा नाला, उस गंदे नरक में वे ही लोग जा गिरते हैं जिनका भोगों में ही सारा जीवन जाता है। वहाँ उनको कभी रोशनी नहीं होती, निकलने का रास्ता नहीं मिलता।

इसलिए उन्हें इस नरक से बचाने के लिए नारद जी ने उन पर कृपा की, उन्हें शाप दे दिया और वह शाप के कारण ब्रज में आकर यमलार्जुन के वृक्ष बने। वहाँ उन्हें श्रीकृष्ण की प्राप्ति हुई क्योंकि ***महात्माओं का कोप भी कृपा होता है।*** इसलिए भक्तों का दर्शन अवश्य पाप नष्ट करता है।

साधूनां समचित्तानां सुतरां मत्कृतात्मनाम्।
दर्शनान्नो भवेद् बन्धः पुंसोऽक्ष्णोः सवितुर्यथा ॥

(भा. १०/१०/४१)

श्री भगवान् ने कहा – जिनकी बुद्धि समदर्शिनी है और हृदय पूर्णरूप से मेरे प्रति समर्पित है, उन साधु-पुरुषों के दर्शन से बन्धन होना ठीक वैसे ही सम्भव नहीं है, जैसे सूर्योदय होने पर मनुष्यों के नेत्रों के सामने अन्धकार का न होना। संत-महापुरुषों का दर्शन खुला हुआ मोक्ष का द्वार है।

विचार करो कि हम सभी कहाँ से आये हैं? जैसे गूलर के फल को तोड़ो तो उसमें हजारों कीड़े रहते हैं, वे उसी में पैदा होते हैं, उसी में बढ़ते हैं, उसी में उनके बच्चे पैदा होते हैं और फिर उसी में मर जाते हैं। उस फल के बाहर क्या दुनिया है? उन्हें पता नहीं है।

पेड़ कितना बड़ा है, उनको पता नहीं है। उस फल में जो कीड़ा है वह यह भी नहीं जानता कि इस पेड़ में कोई दूसरा फल भी है और न उसमें ज्ञान है, न समझ है। ऐसे ही यह संसार है।

ऊमरि तरु बिसाल तव माया।
फल ब्रह्माण्ड अनेक निकाया॥

यह माया क्या है? यह एक गूलर का पेड़ है, इसमें अनेक ब्रह्माण्ड हैं, गिनती नहीं है। ब्रह्माण्ड बहुत बड़ा है, उसमें चौदह लोक हैं, सात ऊपर और सात नीचे। इतना बड़ा ब्रह्माण्ड है और वह एक गूलर के फल की तरह है। उसमें अनन्त जीव हैं। हम लोग इस गूलर के फल में बन्द हैं और हमें कुछ पता नहीं दूसरे फल के बारे में, दूसरे ब्रह्माण्ड में क्या हो रहा है? न जा सकते हैं, न जान सकते हैं।

जीव चराचर जंतु समाना।
भीतर बसहिं न जानहिं आना॥

हम लोग इसमें बन्द हैं और कुछ पता नहीं आगे क्या हो रहा है? हमें तो यह भी पता नहीं कि हम जिस शहर में रहते हैं वहाँ क्या हो रहा है? अतः हम लोग इससे कैसे छूट सकते हैं? इसी में पैदा हुए हैं, बढ़ रहे हैं और मर जाएँगे, इस ब्रह्माण्ड से छूट नहीं सकते। केवल भगवान् के भजन से ही मनुष्य छूटता है, वरना नहीं छूटेगा। लाखों बार हम लोग पैदा हुए, मरे परन्तु इसके बाहर हम नहीं जा सके। इसलिए इससे छूटने के लिए भगवान् का भजन करना चाहिए। भगवान् ने अर्जुन से कहा – हमारा भक्त कौन है?

यस्त्वात्मरतिरेव स्यादात्मतृप्तश्च मानवः ।
आत्मन्येव च सन्तुष्टस्तस्य कार्यं न विद्यते ॥

(गी. ३/१७)

जो आत्मसंतुष्ट है, जैसे तुमने किसी से कुछ कार्य करने की कहा और वह नहीं कर रहा है तो तुमको उसके काम न करने पर

दुःखी नहीं होना चाहिए और उसने कर दिया तो खुश नहीं होना चाहिए, अर्थात् हर परिस्थिति में संतुष्ट रहना चाहिए। ये बात अगर तुम मन में आदत बना लोगे तो उसका लक्षण है 'आत्मतृप्त'। एक व्यक्ति ने पूछा था कि संतुष्टि कैसे मिले? हम सदा संतुष्ट कैसे रहें? तो हमको सोचना पड़ा, संतोष एक ऐसा गुण है, जो सीधे भगवान् से मिला देता है। नारद जी ने कहा था ध्रुव से – कि बेटा जिस परिस्थिति में भगवान् रख दें, जो उसमें संतुष्ट रहता है तो वह अन्धकार से दूर चला जाता है, माया को जीत लेता है।

यस्य यद् दैवविहितं स तेन सुखदुःखयोः ।
आत्मानं तोषयन्देही तमसः पारमृच्छति ॥

(भा. ४/८/३३)

इसलिए हमें असंतुष्ट नहीं होना चाहिए, कोई कुछ कह रहा है, गाली दे रहा है, तुम्हारी निंदा कर रहा है, चिल्ला रहा है तो चिल्लाने दो, कब तक चिल्लाएगा, थक जाएगा। अपनी गलती को देखो। इसीलिये सदा संतुष्ट बने रहो तो तुमको सहज में भगवान् मिल जाएँगे। गीता में भगवान् ने कहा है –**'सन्तुष्टः सततं योगी यतात्मा दृढनिश्चयः।'** जो स्तुति-निन्दा, मान-अपमान यहाँ तक कि हर परिस्थिति में सन्तुष्ट रहता है, वही सच्चा भक्त है। नारद जी ने ध्रुव से कहा – जो तुमको प्रभु ने दे दिया, तुझे सौतेली माँ ने चाँटा लगा दिया, तेरे पिता ने राज्य से निकाल दिया है, उसे भगवान् की कृपा ही समझ और प्रसन्न हो जा, अगर तू मेरी इतनी बात मान ले और इस चाँटे में संतुष्ट हो जा तो बस इतने से ही माया को पार कर जाएगा। ध्रुव जी ने मना कर दिया, हमारे बस का नहीं है। इसलिए नारद जी की बात न मानने के कारण भगवान् के मिल जाने पर भी ध्रुव जी पछताये कि हमने बड़ी भूल की जो गुरु की बात नहीं मानी, इसका दण्ड हमें भोगना पड़ेगा। इसी कारण ध्रुव जी को 36 हजार वर्ष तक राज्य करना पड़ा, उसके बाद ध्रुव लोक में गये, जब तक ध्रुव लोक रहेगा तब तक रहेंगे फिर उसके बाद

अंत में भगवान् के पास पहुँचेंगे। यदि गुरु की बात मान लेते तो उसी समय भगवान् मिल जाते, भगवद्धाम चले जाते। इसलिए यह चीज ध्रुव भी नहीं सीख पाए फिर हमलोग तो कीड़े–मकोड़े हैं। लेकिन ऐसी आदत बना लो – किसी से कुछ कहा, उसने कार्य कर दिया तो खुश मत हो, नहीं किया तो दुःखी मत हो। सदा संतुष्ट बने रहो, यही सच्चे भक्त का लक्षण है।

प्रमाद से पतन

भजन क्या है? कुछ लोग कहते हैं – हमने इतनी देर पाठ किया, जप किया, इतनी देर स्तुति की लेकिन वह भजन नहीं है, वह तो नियम पूर्ति है। भजन वह है जो चौबीस घंटे चलता रहे। गीता में भगवान् ने कहा कि हर समय मन पर नजर रखो –

यतो यतो निश्चरति मनश्चञ्चलमस्थिरम् ।
ततस्ततो नियम्यैतदात्मन्येव वशं नयेत् ॥

(गी. ६/२६)

मन जहाँ-जहाँ बाहर निकलता है, इसका स्वभाव है बाहर निकलने का क्योंकि चंचल है। बहुत ज्यादा चलता है बैठ नहीं सकता, उसे चंचल कहते हैं। उस अपने मन को देखना है कि बाहर कहाँ जा रहा है, लड्डू पेड़ा में, भोगों में अथवा किसी की याद में। जहाँ-जहाँ ये मन जाता है, वहाँ-वहाँ से इसे रोको, बस यही है भजन। अपने वश में उसे ले आओ। इस तरह उसकी चंचलता, अस्थिरता मिटेगी। लोग सोचते हैं कि हमने एक घंटा पाठ कर लिया हो गया भजन, फिर गप्प मार रहे हो, वह भजन नहीं है। एक क्षण भी मन को इधर-उधर नहीं जाने देना चाहिए। आज हमारा सारा समाज तेजहीन क्यों है? क्योंकि हमलोग थोड़ी देर नियम पूर्ति करते हैं उसके बाद फिर वही गप्प मारते हैं, यह भजन नहीं है। केवल कपड़े बदल लेने से कुछ नहीं होगा, अगर मन की एकाग्रता नहीं है तो कुछ नहीं है।

मन न रंगाये, रंगाये जोगी कपड़ा ।
कनवा फड़ैले बाला लटकैले दढ़िया बढ़ैले जोगी होइ गये बकरा ॥
माथा मुड़ैले कपड़ा रंगैले गीता बांच जोगी होइ गैले लफड़ा ।
कहैं कबीर सुनो भाई साधो जम तर बचबा बधिक जैहे पकड़ा ॥

(कबीरदास जी)

जोगी बन गये, कपड़ा रंगा लिया और मन नहीं रंगाया तो वह जोग सच्चा जोग नहीं है। सिर घुटा लिया, कपड़ा रंगा लिया और दाढ़ी बढ़ाकर बकरा बन गये परन्तु मन नहीं रंगाया केवल भाषण देते हैं, भाषण देने वाले को योगी नहीं कहा जाता है क्योंकि उनका मन अभी साधन में नहीं रंगा है। मन जहाँ-जहाँ जा रहा, चंचल है, अस्थिर है, वहाँ से इसे लौटाओ। न तो खुद प्रमाद करो और न किसी को करने दो क्योंकि प्रमाद जीव को नष्ट कर देता है। कोई छोटा हो या बड़ा हो, बेकार समय नष्ट करने की अनुमति भगवान् ने किसी को नहीं दी। किसी साधु को रोको तो बुरा मानता है क्योंकि 'अहम्' होता है, जबकि हर समय जो साधन करता है, एक क्षण भी व्यर्थ बातचीत नहीं करता है, वह है साधु। प्रायः साधु समाज में आलसी लोग घुस आते हैं, बैठे-बैठे रोटी खाया, गप्प लड़ाया और साधन कुछ नहीं करना। इसलिए जो प्रमादी है उसका कभी संग नहीं करो क्योंकि प्रमाद छुआछूत की बीमारी है। एक प्रमादी बहुतों को प्रमादी बना देता है। इसलिए प्रमाद करने से भगवान् ने मना किया है।

जिसके अन्दर प्रमाद है उसमें छः शत्रु बने रहते हैं। मनु पुत्र प्रियव्रत साधु बनना चाहते थे, नारद जी बनाना चाहते थे; लेकिन ब्रह्मा जी उन्हें कर्मयोगी बनाना चाहते थे तो बाप और बेटा में खेंचातानी हुई। ब्रह्मा जी आये और नारद जी को डांटा – क्या करता है? मनुष्य साधु भी बन जाएगा परन्तु यदि प्रमादी है तो उसका नाश होगा। फालतू बातचीत करेगा, गप्प मारेगा, राग-द्वेष में फँसेगा, निंदा आदि करेगा इससे अपना जीवन भी नष्ट करेगा और दूसरे का भी। ब्रह्मा जी ने साफ कहा कि –

भयं प्रमत्तस्य वनेष्वपि स्याद् यतः स आस्ते सहषड्वर्गवर्गः ।
जितेन्द्रियस्यात्मरतेर्बुधस्य गृहाश्रमः किं नु करोत्यवद्यम् ॥

(भा. ५/१/१७)

अगर प्रमाद है तो जंगल चले जाने से क्या होगा? साधु बनने से क्या होगा, तमाम जंगलों में गए लेकिन भीतर प्रमाद है तो तुम्हें भय है, माया खा जायेगी, तुम साधु बनने के बाद भी नष्ट होगे, बच नहीं पाओगे।

जब मैं ब्रज में आया था तो मुझसे किसी सिद्ध महापुरुष ने कहा था – 'लाला ! साधु संग नहीं करना।' मुझे आश्चर्य लगा कि बिना साधु संग के तो भक्ति नहीं मिलती। वह बोले – 'बेटा ! पढ़ने-लिखने की बात अलग है, हम अनुभव की बात बता रहे हैं, साधुसंग मत करना, नष्ट हो जाओगे, वे साधु अब नहीं रहे जो हर समय भजन-साधन करते थे, अब के तो साधु कहाँ बढ़िया भंडारा हो रहा है, बस इसी तलाश में घूमते रहते हैं। उनका संग करने से तुम पेटू बन जाओगे।' उनकी बात बिल्कुल सही निकली, हम नये-नये आये थे और साधुओं का संग किया तो देखा सच में कहीं भगवच्चर्चा नहीं है। केवल पराई निंदा है, राग-द्वेष का ही वातावरण मिला तब हमने उनका संग करना छोड़ दिया। आज तक हम किसी स्थान में नहीं गए, बात जब अनुभव में आ गयी तो समझ में आया कि वह ठीक कहते थे।

इसलिए जहाँ प्रमाद है, वहाँ छः शत्रु बैठे हैं। जो प्रमादी है, चाहे पढ़ा-लिखा विद्वान् है लेकिन उसमें प्रमाद है तो छः शत्रु काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मात्सर्य आदि आकर उसे नष्ट कर देंगे। जो प्रमादी नहीं है, जितेन्द्रिय है, उसी का भगवान् में प्रेम होगा, उसी को ज्ञान-विज्ञान की प्राप्ति होगी और यदि वह गृहस्थ जीवन में भी जाएगा तो गृहस्थ भी उसे नुकसान नहीं करेगा; स्त्री आयेगी तो वह भी भजन करेगी, बेटा-बेटी भी भजन करेंगे, फालतू समय बिल्कुल नष्ट नहीं करेगा, उसका गृहस्थ आश्रम भी साधु से अच्छा रहेगा।

एक प्रमादी साधु सैकड़ों को चिलम लगाना, गप्प मारना, परनिंदा करना, राग-द्वेष आदि में फँसा देता है। प्रमाद जीवन नष्ट

कर देता है। ब्रह्मा जी ने कहा – प्रमाद हटाओ, जिसमें प्रमाद नहीं है वह गृहस्थी भी साधु से अच्छा है। नुकसान तब है जब साधु होकर भी कुछ नहीं करता है। खाली समय बैठा है, सो रहा है, वह न कुछ भजन कर सकता है, स्वयं तो नष्ट होगा, पास वाले को भी नष्ट कर देगा। इसलिए मनुष्य को साधनशील का संग करना चाहिए। बेकार बैठने वाले के साथ कभी नहीं बैठो। कबीरदास जी ने कहा – सारा जीवन व्यर्थ में, प्रमाद में गँवा दिया –

बीत गए दिन भजन बिना रे ।
बाल अवस्था खेल गँवायो, जब जवान तब मान घना रे ॥
लाहे कारन मूल गँवायो, अजहुँ न गई मन की तृष्ना रे ।
कहत 'कबीर' सुनो भाई साधो, पार उतर गए संत जना रे ॥

(कबीरदास जी)

यह जीवन प्रमाद में नष्ट करने के लिए नहीं है। जिसके पास रहने से प्रमाद आये, चाहे वह महात्मा है उसका संग नहीं करना चाहिए। विरक्त बनकर जंगलों में घूम आओ लेकिन प्रमाद है तो नष्ट हो जाओगे। मनुष्य में प्रमाद आया और वह नष्ट हुआ। इसलिए चौबीसों घण्टे साधन करना चाहिए। मन चंचल है 'इधर गया, उधर गया' उसको रोको, यही सच्चा भजन है।

प्रशान्तमनसं ह्येनं योगिनं सुखमुत्तमम् ।
उपैति शान्तरजसं ब्रह्मभूतमकल्मषम् ॥

(गी. ६/२७)

मन शान्त होगा तो उस योगी को उत्तम सुख मिलेगा क्योंकि उसका रजोगुण शान्त हो गया, मन में कोई कल्मष नहीं रहा, आलस नहीं रहा। ये कब हुआ? जब उसने ऐसा साधन किया जहाँ एक क्षण को भी मन अस्थिर नहीं हुआ। अगर एक क्षण को भी छुट्टी दे दो, तो मन तुम्हें नष्ट कर देगा। मन बड़ा चंचल है, स्थिर नहीं रहेगा तो यह तुमको मार डालेगा। भागवत में शुकदेव जी कहते हैं –

नित्यं ददाति कामस्य च्छिद्रं तमनु येऽरयः ।
योगिनः कृतमैत्रस्य पत्युर्जायेव पुंश्चली ॥

(भा. ५/६/४)

जैसे पुंश्चली (व्यभिचारिणी) स्त्री जार पुरुष के साथ मिलकर अपने पति को मरवा देती है, उसी प्रकार मन हर समय मौका देता है कामनाओं को और जो शत्रु हैं काम, क्रोध, लोभ, मोह आदि इनको भी मौका देता है और पुंश्चली स्त्री की भाँति साधक का पतन करा देता है। एक दृष्टांत है – किसी गाँव में एक बहुत धनी व्यक्ति रहता था। उसकी स्त्री पुंश्चली अर्थात् व्यभिचारिणी थी। उसने पति के साथ धोखा किया, रात को घर के किवाड़ खोल दिये तो ७-८ जो उसके लगवार (प्रेमी) थे, वे बदमाश घर में घुस आये और उन्होंने उसके पति को पहले खाट में कई रस्सियों से बाँध दिया क्योंकि वह बड़ा पुष्ट पहलवान था, उसके बाद उन्होंने उसके एक-एक अंग को काटा और तड़पा-तड़पा कर मारा। किसी को तड़पाकर मारो तो कितना कष्ट होता है? वैसे ही हमारा मन है, जीवन भर तड़पा-तड़पा कर मारता है, बुरे कर्मों में ले जाता है।

मन से मित्रता की, मन की बात मानने लग गए तो जैसे उस व्यक्ति ने पुंश्चली पर विश्वास किया और उसने रात को किवाड़ खोल दिए। घर में बदमाश घुस आये और तड़पा-तड़पा कर मारा। ठीक वैसे ही हमारा मन है, हमने अपने मन से मित्रता की, उसकी बात मानने लग गए तो मन हमें मरवा डालता है। जीव कष्ट पाता है, कितने गलत कर्म मन करवाता है लेकिन हम समझ नहीं पाते। इसलिए जब तुम्हारा मन शान्त होगा, तभी तुम्हें उत्तम सुख मिलेगा और तब तुम ब्रह्मस्वरुप हो जाओगे।

भक्ति का सार –'भगवद्-भागवत सेवा'

सेवा करने वाले बहुत आसानी से भगवान् को प्राप्त कर लेते हैं, उन्हें शीघ्रातिशीघ्र भक्ति की प्राप्ति हो जाती है। कठिन साधन – योग, यज्ञ, तप करने वालों को परिश्रम अधिक होता है। योगी, यती, तपी को उतनी जल्दी भक्ति नहीं मिलेगी, चाहे वे कितने बड़े विरक्त बन जाएँ। सेवा से जितनी जल्दी प्राप्ति होती है, उतनी अन्य साधनों से नहीं होती, ये बात भागवत में कही गयी। किन्तु सेवा सब नहीं कर सकते क्योंकि सेवा में 'अहंभाव' बहुत जल्दी छोड़ना पड़ता है। 'अहंभाव' नाश के बिना सेवा नहीं होती है। जिसमें 'अहम्' है वह सेवा नहीं कर सकता है।

पानेन ते देव कथासुधायाः प्रवृद्धभक्त्या विशदाशया ये ।
वैराग्यसारं प्रतिलभ्य बोधं यथाञ्जसान्वीयुरकुण्ठधिष्ण्यम् ॥

(भा. ३/५/४५)

जो लोग श्रद्धा से कथा सुनते हैं, भगवान् स्वयं उनके हृदय में प्रवेश कर जाते हैं। जैसे आश्विन-कार्तिक के महीने में बरसात का गन्दा जल अपने-आप शुद्ध हो जाता है, वैसे ही भगवान् के हृदय में प्रवेश करते ही सब शुद्ध हो जाता है।

वल्लभ सम्प्रदाय की प्रसिद्ध वाणी 'वैष्णव वार्त्ता' में कथा आती है – विट्ठलनाथ गोसांई जी के भगवद्धाम को चले जाने के पश्चात् उनके पुत्रों ने यज्ञ करने की सोचा। तो कान्हबाई (गोविन्द स्वामी की बड़ी बहन) वह भक्त थीं, उन्होंने मना कर दिया कि कोई यज्ञ करने की जरूरत नहीं, ***भगवान् की सेवा करना ही सबसे बड़ा यज्ञ है*** / प्रभु की सेवा छोड़कर क्यों ये सब कर रहे हो? यही भागवत में कहा कि भगवान् की सेवा में कोई परिश्रम नहीं है और शुद्ध भक्तिमार्ग भी यही है कि भगवान् और भक्तों की सेवा की जाए।

तथापरे चात्मसमाधियोग बलेन जित्वा प्रकृतिं बलिष्ठाम् ।
त्वामेव धीराः पुरुषं विशन्ति तेषां श्रमः स्यान्न तु सेवया ते ॥

(भा. ३/५/४६)

लोग बड़े-बड़े साधन करते हैं लेकिन सेवक से जितना भगवान् प्रसन्न होते हैं उतना तप, योग, यज्ञादि कठिन साधन करने वालों से नहीं होते। जो लोग भक्तों की, भगवान् की सेवा करते हैं, वे जप, तप, योग, यज्ञ आदि कठोर साधन वालों से बहुत आगे चले जाते हैं, सेवा का महत्त्व समझना बहुत कठिन है। नामदेव जी छोटे से थे, ठाकुर जी की सेवा करते थे, उन्हें भगवान् मिल गए और उन्होंने भगवान् को दूध पिलाया। भगवान् प्रेम की सेवा से जितने प्रसन्न होते हैं, उतना तो जप-तपादि साधनों से भी नहीं होते। इसलिए नामदेव जी की सेवा से भगवान् प्रसन्न हुए और दूध पिया। यही बात रामायण में भी कही गयी है। देवगुरु वृहस्पति जी ने इंद्र से कहा –

सुनु सुरेस उपदेसु हमारा ।
रामहि सेवकु परम पिआरा ॥
राम सदा सेवक रुचि राखी ।
बेद पुरान साधु सुर साखी ॥

(रा.च.मा.अयो. २१९)

देखो – भक्ति का सार क्या है? भक्ति का सार है – सेवकों (भक्तों) की सेवा करना। भगवान् को सेवक इतना प्यारा है कि भगवान् अपनी सेवा से उतने खुश नहीं होते, जितने कि भक्त की सेवा से प्रसन्न होते हैं। इसलिए भगवान् की सेवा के साथ-साथ भक्तों की सेवा भी करो, यही भक्ति का सार है। सेवा ऐसी चीज है कि उसके सामने सब साधन व्यर्थ हैं। योग करना, पूजा करना ये सब छोड़ो। इसलिए कान्हबाई ने गुसांई जी के पुत्रों को यज्ञ करने से रोक दिया कि क्या जरूरत है भगवान् की सेवा छोड़कर यज्ञादि साधन करने की। अंत में सबका सार यही है कि बिना भक्ति के

आत्यन्तिक क्षेम नहीं होता। इसलिए मनुष्य को सब संदेह छोड़कर भगवान् की व भक्तों की सेवा करनी चाहिए। श्रीकृष्ण सेवा ही जीव का परम धन है। यदि मानसी सेवा हो जाये तो सबसे ऊँची बात है लेकिन मानसी सेवा सरल नहीं है, चित्त पिघलकर सेवा में लग जाए। चित्त का पिघलना क्या है? मनुष्य भोग भोगता है, उससे चित्त कठोर बनता है। भोगी भोगों में अपनी आयु, कीर्ति, श्री आदि शक्तियों को नष्ट कर लेता है।

काम में बारह तरह की हिंसा होती है।

इन्द्रयाणि मनः प्राण आत्मा धर्मो धृतिर्मतिः।
ह्रीः श्रीस्तेजः स्मृतिः सत्यं यस्य नश्यन्ति जन्मना॥

(भा. ७/१०/८)

'हिंसा' माने मार डालना, मनुष्य जिसको भोगता है, पुरुष स्त्री को, स्त्री पुरुष को मार डालते हैं। बारह शक्तियाँ नष्ट हो जाती हैं भोग में।

व्यास पराई कामिनी कारी नागिन जानि।
छूवत ही मर जावेगो गरुण मन्त्र नहिं मानि॥

(व्यासवाणी)

काम में हिंसा होती है, व्यास जी ने योगसूत्र (२/१५) के भाष्य में कहा है कि बिना हिंसा के भोग नहीं होता है '**नानुपहत्य भूतानि भोगः सम्भवति**' इसलिए कामी का हृदय कठोर हो जाता है। रवीन्द्र नाथ टैगोर ने कहा – 'beauty to see not to touch" सुन्दरता को देखो पर उसे भोगकर नष्ट मत करो। फूल को अगर मसलोगे तो सुन्दरता नष्ट हो जायेगी। जब प्रह्लाद से भगवान् ने कहा – प्रह्लाद ! जो वर माँगना है मांग ले। तो प्रह्लाद जी ने उत्तर दिया प्रभो ! '**यस्त आशिष आशास्ते न स भृत्यः स वै वणिक्।**' (भा. ७/१०/४) जो आपसे कुछ चाहता है वह भक्त नहीं, वह तो बनिया है क्योंकि लेन-देन का कार्य तो बनिया का होता है और प्रह्लाद जी ने भगवान् को फटकार लगाई कि आप हमको कामना

सिखाते हो। फिर सम्भलकर कहते हैं कि आप ऐसा नहीं कर सकते कि जो आपकी शरण में (संसारी बन्धन से) मुक्त होने के लिए आये और आप उसे कामनाएँ सिखावें, ये जो आपने कहा यह तो केवल **'भृत्यलक्षणजिज्ञासुर्भक्तं कामेष्वचोदयत्।'** (भा. ७/१०/३) अपने सेवक की परीक्षा लेने के लिए कहा था।

अतः कामना क्या है? कामना हृदय की वह गांठ है जो कभी नहीं खुलती है। मनुष्य जितना भोग भोगता जाता है, उतनी ही भोगों की प्यास बढ़ती जाती है। जैसे मरते समय सन्निपात में प्यास बढ़ती है, जितना पानी पियो, प्यास उतनी बढ़ती जायेगी। इस प्रकार भोग मनुष्य के मन को कठोर बना देता है। इसलिए भोग में जीव के पास जो बारह शक्तियाँ हैं, वे नष्ट हो जाती हैं। प्रह्लाद जी कहते हैं –

इन्द्रियाणि मनः प्राण आत्मा धर्मो धृतिर्मतिः ।
ह्रीः श्रीस्तेजः स्मृतिः सत्यं यस्य नश्यन्ति जन्मना ॥

(भा. ७/१०/८)

हे नरहरे ! भोग से इन्द्रियों की शक्ति घट जाती है, मन की शक्ति घट जाती है, जीवन शक्ति घट जाती है, आत्मा (शरीर) की शक्ति घट जाती है, धर्म की शक्ति घट जाती है, धृति – (मनुष्य जिस शक्ति से प्राण, इन्द्रिय, मन धारण करता है) वह नष्ट हो जाती, बुद्धि नष्ट हो जाती है, ये नहीं सोच पाता कि क्या धर्म है, क्या अधर्म है, सब लज्जा नष्ट हो जाती है। बिना लज्जा नाश के विषय भोग नहीं होता। निर्लज्जों की भांति पुरुष स्त्री के सामने नंगा हो जाता है, स्त्री पुरुष के सामने। अतः तेज नष्ट हो जाता है, श्री नष्ट हो जाती है, स्मृति नष्ट हो जाती है। भूल जाता है कि हमें ये काम करना चाहिए या नहीं। अगर मनुष्य भोगों में इन बारह शक्तियों को नष्ट नहीं करता है तो वह ईश्वर रूप हो जाता है लेकिन भोगों को छोड़ना कठिन है क्योंकि अनादिकाल का अभ्यास रहता है। भोग तभी छूटता है, जैसे प्रह्लाद जी ने कहा – जब ऐसा शुद्ध संग मिल जाये,

ऐसा संत मिल जाए जो भोगी न हो, उसके पास बैठो, उसके पास रहो, उसकी वाणी को सुनकर धारण करो, उसकी आज्ञा का पालन करो। केवल सर्वतोभाव से निष्किंचन महापुरुष की शरणागति ग्रहण करो। बस इतने से ही तुम्हारी सारी कामनाएँ जलकर भस्म हो जाएँगी। सब अनर्थ चले जाएँगे। काम जलाना कोई कठिन बात नहीं है, अगर अच्छे विशुद्ध संत का संग मिल जाए, जिसके पास काम नहीं है, क्रोध नहीं है।

संत बिसुद्ध मिलहिं परि तेही ।
चितवहिं राम कृपा करि जेही ॥

(रा.च.मा.उत्तर. ६९)

भगवान् जिस पर कृपा करते हैं, उसी को ऐसे विशुद्ध संतों (महापुरुषों) का संग मिलता है। विशुद्ध संत भगवान् की पूर्ण कृपा की गारन्टी है। भगवान् की कृपा का लक्षण है 'विशुद्ध संत का मिलना'।

सर्वात्मभाव की शरणागति

भगवान् की शरणागति सर्वतोभाव से होनी चाहिए। गीता में भगवान् ने कहा –

तमेव शरणं गच्छ सर्वभावेन भारत ।
तत्प्रसादात्परां शान्तिं स्थानं प्राप्स्यसि शाश्वतम् ॥

(गी. १८/६२)

"अर्जुन ! सर्वभाव से उसकी शरण में जा।" सर्वभाव का मतलब तुम्हारे पास जो कुछ है – शरीर है, इन्द्रियाँ हैं, मन है, बुद्धि है, धन है, परिवार है, स्त्री है, पुत्र है – ये सब प्रभु को समर्पित कर देना, सर्वभाव की शरणागति कहलाती है। हरिराम व्यास जी ने लिखा है – अपनी स्त्री है वह भी भगवान् और भगवद्भक्तों की सेवा में लगा देनी चाहिए।

"तिरिया होय तो हरि की दासी"

यदि बेटा-बेटी हैं और उन्हें भगवान् से प्रेम नहीं है अर्थात् भगवद्विमुख हैं तो उनका पालन-पोषण वैष्णव को नहीं करना चाहिए, अगर वह करता है तो उसकी भक्ति नष्ट हो जाती है, वैष्णव धर्म सिद्ध नहीं होता है।

विदुर जी ने धृतराष्ट्र से यही कहा था –"धृतराष्ट्र ! यह जो तुम्हारा सबसे बड़ा लड़का दुर्योधन है, जिसको तुमने सब कुछ सौंप दिया है। यह भगवान् से विमुख है इसलिए यह दोष है जो तुम्हारे घर आ गया है और तुम बेटा समझकर इसका पालन करते हो, धन-सम्पत्ति राज्य सब देते हो, इसलिए भगवान् से विमुख हो गए हो। अगर तुम हमारी बात मान लोगे तो तुम्हारा सारा वंश बच जाएगा, नहीं तो नष्ट हो जाएगा।" परन्तु विदुर जी की बात दुर्योधन को बहुत कड़वी लगी और वह क्रोध में बोला – यह तो काला साँप है, साँप को दूध पिलाओ तो दूध पिलाने वाले को ही काटता है।

भक्त, भक्त से प्रेम करेगा और भगवद् द्वेषी, भगवद् द्वेषी से प्रेम करेगा। जब मनुष्य भगवद्विमुख व्यक्ति में आसक्ति करता है, प्रेम करता है तो वह भी भगवान् से विमुख हो जाता है। '**नाते नेह राम के मनियत सुहृद सुसेव्य जहाँ लौं।**' केवल भगवद्भक्त से ही नाता रखना चाहिए, भगवद् विमुख से नहीं रखना चाहिए, यदि कोई रखता है तो वह व्यक्ति भी भगवान् से विमुख हो जाता है और भगवान् के भक्तों से प्रेम करेगा तो यह निश्चय है कि भगवान् उसको मिलेंगे। बाल्मीकि जी से भगवान् राम ने पूछा था – हमें स्थान बताइए, हम कहाँ रहें? तब उन्होंने कहा था कि जिनके हृदय में आपके भक्तों से प्रेम है, उनके हृदय में आप रहो।

राम भगत प्रिय लागहिं जेही ।
तेहि उर बसहु सहित बैदेही ।

(रा.च.मा.अयो. १३१)

भगवान् के भक्तों से प्यार करो, बिना मेहनत के भगवान् तुम्हारे हृदय में आ जाएँगे और यदि उनसे प्रेम नहीं है तो भगवान् आये हुए भी चले जाएँगे। बाल्मीकि जी ने राम से कहा – जिनको भगवान् के भक्त प्रिय लगते हैं उनके हृदय में आप सीता जी के साथ निवास करो। यह अटल वैष्णव सिद्धान्त है। विदुर जी बोले धृतराष्ट्र से –

स एष दोषः पुरुषद्विडास्ते
गृहान् प्रविष्टो यमपत्यमत्या ।
पुष्णासि कृष्णाद्विमुखो गतश्री-
स्त्यजाश्वशैवं कुलकौशलाय ॥

(भा. ३/१/१३)

'धृतराष्ट्र ! यह तुम्हारा पुत्र नहीं, साक्षात् दोष है और तुम इसका पालन-पोषण करते हो। दुर्योधन का कृष्ण से प्रेम नहीं है, कृष्ण से द्वेष करता है। यह साक्षात् मूर्तिमान दोष है और तुम इसको अपना बेटा समझते हो, पालन करते हो, इसलिए तुम भगवान् से विमुख हो गए हो, श्री हीन हो गए हो। अगर सारे कुल

का भला चाहते हो तो इस बेटे का त्याग कर दो। यह बेटा अमंगल रूप है।' परन्तु उन्होंने ममता के कारण विदुर जी की बात नहीं मानी। अंत में वही हुआ – सभी कौरव मारे गये, उनमें से कोई भी नहीं बचा। इसलिए विदुर जी ने कहा था – यदि तुम अपने वंश की कुशलता चाहते हो तो यह हमारा बेटा है, यह सम्बन्ध हटा लो और इसका परित्याग कर दो, लेकिन यह आसक्ति बहुत प्रबल होती है और हुआ वही, कौरव वंश में एक भी नहीं बचा। जो विदुर ने कहा, यही बात विभीषण ने रावण से कही थी –

रामु सत्यसंकल्प प्रभु सभा कालबस तोरि ।
मैं रघुबीर सरन अब जाउँ देहु जनि खोरि ॥

(रा.च.मा.सुन्दर. ४१)

रावण ! तुम्हारा जो पुत्र-पौत्रों का अनगिनत झुण्ड है, तुमने जो तीनों लोक जीत लिये, यह सब काल के आधीन हैं। इसलिए मैं तो भगवान् की शरण में जाता हूँ, तुम मुझे दोष मत देना।

अस कहि चला बिभीषनु जबहीं ।
आयूहीन भए सब तबहीं ॥

(रा.च.मा.सुन्दर. ४२)

इस प्रकार कहते हुये विभीषण जब लंका छोड़कर चले, उसी समय सबकी आयु नष्ट हो गयी, उसी समय सब मर गये। बाद में जो युद्ध हुआ था वह तो भगवान् को युद्ध की लीला दिखानी थी, उनकी आयु तो उसी समय नष्ट हो गयी थी, जब भक्त द्रोह किया था। भागवत में लिखा है –

आयुः श्रियं यशो धर्मं लोकानाशिष एव च ।
हन्ति श्रेयांसि सर्वाणि पुंसो महदतिक्रमः ॥

(भा. १०/४/४६)

जब मनुष्य भगवद्भक्तों का अपराध करता है, तो उसी समय उसकी आयु नष्ट हो जाती है। हमको दिखाई नहीं पड़ता लेकिन उसकी आयु नष्ट हो जाती है, श्री नष्ट हो जाती है, यश-ऐश्वर्य नष्ट हो

जाता है, सब धर्म नष्ट हो जाता है, संसार में जितना भी उसका प्रभाव है, सम्बन्ध है, सुख-सम्पत्ति आदि सब नष्ट हो जाते हैं। जितने कल्याण के साधन हैं, सब नष्ट हो जाते हैं। यह सच्चा अनुभव है,

देश में बड़े-बड़े प्रभावशाली लोग थे पर उन्होंने भक्तों से द्रोह किया तो सब समाप्त हो गए। न उनकी श्री रही, न कीर्ति रही, इसीलिए भगवद्भक्त से कभी द्रोह नहीं करना चाहिए और सर्वतोभाव से भगवान् की शरण में जाना चाहिए। सर्वतोभाव माने कहीं भी आसक्ति बचाकर नहीं रखना चाहिए। भगवान् और भगवज्जनों से ही अपना सम्बन्ध, संपर्क और प्रेम रखना चाहिए। सर्वतोभाव से मतलब है – 'सबसे पहले शरीर; हर मनुष्य शरीर में आलस्य के कारण काम चोरी करता है। आज हमारा समाज तेजहीन क्यों है? मनुष्य अपने शरीर को बचाता है कि शरीर पर जोर न पड़े। भला कीर्तन करने में क्या जोर है? भगवान् का नाम बोलना है लेकिन हम जैसे लोग इतने निकम्मे हैं, आलसी हैं कि उसमें भी जोर पड़ता है। हम लोग इस शरीर के कारण आलस्य, प्रमाद और कामचोरी करते हैं। जबकि यह शरीर किसी काम का नहीं है, एक दिन नष्ट हो जाएगा।

कृमिविड्भस्मसंज्ञान्तं शरीरमिति वर्णितम् ।
अस्थिरेण स्थिरं कर्म कुतोऽयं साधयेन्न हि ॥

(भा. माहा. ५/६०)

इस शरीर में मल-मूत्र, रक्त-मांस, मज्जा-मेदा आदि यही सब विकार भरे पड़े हैं, चाहे किसी भी धर्म या सम्प्रदाय से हो इस शरीर की तीन ही गति होंगी या तो जला दिया जाएगा तो राख बन जाएगा या दफना दिया जाएगा तो मिट्टी बन जाएगा या पानी में बहा दिया जाएगा तो मछली व कीड़े-मकोड़े खा जायेंगे। यह मुँह किस काम का, यह जीभ किस काम की जो भगवान् का नाम नहीं लेती है। महादेव जी ने कहा है –

जो नहिं करइ राम गुन गाना ।
जीह सो दादुर जीह समाना ॥

(रा.च.मा.बाल. ११३)

वह मेंढक की जीभ है, जो खाली कीड़े खाती है। कुछ खाने बैठेंगे तो छाती अड़ा देंगे और कीर्तन के लिए, भगवान् के भक्तों की सेवा के लिए आलस्य, प्रमाद, तमाम कामचोरियाँ आती हैं मन में। भगवान् ने गीता में कहा –

नियतस्य तु सन्न्यासः कर्मणो नोपपद्यते ।
मोहात्तस्य परित्यागस्तामसः परिकीर्तितः ॥

(गी. १८/७)

जो नियत कर्म हैं जैसे शरीर से सेवा करना, इन्द्रियों से सेवा करना आदि, जो शरीर के हाथ, पाँव आदि सभी अंगों के ठीक होने पर भी उसे मोहवश छोड़ देता है, वह तामस त्याग है। हमलोग साधु बनकर भी तामस त्याग करते हैं। आज हमारा सारा समाज तामस त्याग में डूब गया है। इससे देश की क्षति है, समाज की क्षति है। सर्वतोभाव की शरणागति वही है, जब शरीर के सभी अंग भगवान् एवं भक्तों की सेवा के काम आवें। कान का प्रयोग है भगवान् की कथा सुनी जाए, नहीं तो हमारा कान सर्प का बिल है। "**जिन्ह हरिकथा सुनी नहिं काना । श्रवन रंध्र अहिभवन समाना ॥**" दुनिया भर की बात करते हैं सुनते हैं, परनिंदा बड़े कान देकर सुनते हैं लेकिन कथा के समय कानों को बंद कर लेते हैं। "**नयनन्हि संत दरस नहिं देखा । लोचन मोरपंख कर लेखा ॥**" भगवान् के दर्शन तो मुश्किल हैं लेकिन अगर भगवान् के भक्त का दर्शन नहीं किया तो जैसे मोर के पंख में अनेकों आँखें बनी रहती हैं, वे आँखें जीवित नहीं हैं, वैसे ही हम जैसे लोगों की आँखें मर चुकी हैं। "**ते सिर कटु तुंबरि समतूला । जे न नमत हरि गुर पद मूला ॥**" भगवान्, भगवद्भक्त या गुरु के आगे सिर नहीं झुकता है तो वह कड़वी तूँबी के समान है। तूँबी बड़ी कड़वी होती है, उसका

तूंबा बड़ा कड़वा होता है अतः उस व्यक्ति का सिर कड़वी तूँबी के तूँबे के समान है, उसमें कड़वा विमुखता का रस भरा हुआ है। ये बात हम लोगों को ध्यान देनी चाहिए कि शरीर का रोम-रोम भगवत्सेवा में, भक्तों की सेवा में लगे। जैसे – महाराज अम्बरीष जी थे, उनके शरीर का रोम-रोम भगवान् की सेवा में लगता था। चक्रवर्ती सम्राट थे और सेवा के प्रताप से उनके पास अतुल वैभव था, पृथ्वी पर उनके समान वैभव किसी के पास नहीं था। सेवा के प्रताप से अव्यय लक्ष्मी थी, जो देवताओं के पास भी नहीं थी। इसीलिए सच्ची शरणागति है कि शरीर का रोम-रोम भगवत्सेवा में काम आये।

स वै मनः कृष्णपदारविन्दयो-
र्वचांसि वैकुण्ठगुणानुवर्णने ।
करौ हरेर्मन्दिरमार्जनादिषु
श्रुतिं चकाराच्युतसत्कथोदये ॥

(भा. ९/४/१८)

अम्बरीष जी अपने मन को भगवान् के चरणों में लगाते थे। अपनी वाणी का भगवद् गुणगान में प्रयोग करते थे। हाथों से मंदिर में बुहारी (झाड़ू) लगाते थे, कानों से भगवान् की कथा सुनते थे, नेत्रों से भगवान् का दर्शन करते थे, शरीर भक्तों की सेवा से पवित्र करते थे – किसी भक्त के चरणों को दाब दिया, किसी भक्त के शरीर की सेवा की, किसी भक्त के वस्त्र धो दिए। भगवद्भक्त का शरीर करोड़ों गंगा से भी ज्यादा पवित्र है। गंगा का पानी तो बहुत दिन में पवित्र करेगा जबकि भक्तों का शरीर उसी समय पवित्र कर देता है।

यत्पादसंश्रयाः सूत मुनयः प्रशमायनाः ।
सद्यः पुनन्त्युपस्पृष्टाः स्वर्धुन्यापोऽनुसेवया ॥

(भा. १/१/१५)

गंगा जी तो पृथ्वी पर आ ही नहीं रहीं थीं। भगीरथ जी द्वारा कारण पूछने पर गंगा जी बोलीं – पापी लोग आकर मेरे जल में अपना पाप धोएँगे, मुझे गन्दा कर देंगे, वह पाप मैं कहाँ धोउँगी? तब भगीरथ जी बोले – हाँ माँ ! मैंने उपाय सोचा है –

साधवो न्यासिनः शान्ता ब्रह्मिष्ठा लोकपावनाः ।
हरन्त्यघं तेऽङ्गसङ्गात् तेष्वास्ते ह्यघभिद्धरिः ॥

(भा. ९/९/६)

जिन्होंने अपने सब कर्म भगवान् को अर्पण कर दिये हैं, शान्त हैं, भगवान् में स्थित हैं अर्थात् ब्रह्मनिष्ठ हैं, हे गंगा मैया ! यह संसार उनसे पवित्र हो रहा है। इस संसार में इतना पाप हो रहा है कि पृथ्वी नीचे चली जाए लेकिन बड़े-बड़े महापुरुष अभी संसार में हैं, जिनसे पृथ्वी रुकी हुई है। भगीरथ ने कहा – हे मैया ! वे जब तेरे जल में स्नान करेंगे, तब तेरे पाप को भी हरण करेंगे। उनमें इतनी शक्ति कैसे आ गयी जो गंगा माँ के पाप धो देंगे। जो गंगा सारे संसार के पाप धोती है, उस गंगा के पाप धोने की भी शक्ति उनमें कहाँ से आ गयी? यह बात कोई बढ़ाकर नहीं कही जा रही है। गंगा जी को तो केवल एक बार भगवान् के चरण छूने का अवसर मिला था परन्तु भक्तों के हृदय में निरन्तर भगवान् के चरणकमल रहते हैं। इसलिए गंगा जी से भी बहुत ज्यादा उनमें शक्ति है और वे गंगा जी को पवित्र कर देते हैं। इसलिए सर्वतोभाव की शरणागति करनी चाहिए। ***शरीर का एक-एक अंग, प्रत्येक इन्द्रियाँ हाथ, पाँव, आँख, कान आदि सब भगवत्सेवा में लग जायें, इससे बड़ा कोई यज्ञ नहीं हो सकता।***

एक पुजारी जी थे, जब उनका शरीर छूटा तो एक पेड़ के नीचे उनका दाह संस्कार हुआ और उसका धुँआ आकाश में गया। ऊपर से एक विमान जा रहा था, धुआँ लग गया उस विमान में तो विमान सहित देवता जमीन पर आ गिरे और सारे गाँव में हल्ला मचा। उस गाँव में एक राजा था, उसने पूछा – आप कौन हैं?

उन्होंने कहा – मैं देवता हूँ, अशुभ व्यक्ति की चिता का धुँआ लगा हमारे विमान में और मुझमें उड़ने की शक्ति नहीं रही। पुण्य से हमलोग देवता बनते हैं।

"ते तं भुक्त्वा स्वर्गलोकं विशालं
क्षीणे पुण्ये मर्त्यलोकं विशन्ति ।"

(गी. ९/२१)

जब पुण्य क्षीण हो जाता है तो देवता फिर से मृत्युलोक में आ जाते हैं। इस व्यक्ति के चिता के धुआँ से ही हमारा पुण्य उड़ गया। भगवान् ने गीता में कहा – सतोगुण की जब वृद्धि होती है तो मनुष्य ऊपर के लोकों में जाता है, रजोगुण की वृद्धि होने पर मनुष्यादि बनते हैं और नीच कर्म वाले अधोगति में जाते हैं। जैसे सर्प बन गये, कुत्ता बन गये, बिच्छू बन गये या जड़ योनि बन गये, पहाड़ आदि बन गये। उसने कहा – हमारा पुण्य क्षीण हो गया, अब उड़ नहीं सकते। लोगों ने पूछा – अब क्या होगा? देवता ने कहा – अगर किसी ने अश्वमेध यज्ञ किया हो और उसका फल हमें दे दे, तो हमारे अन्दर फिर से शक्ति आ जायेगी। अश्वमेध यज्ञ भला कलियुग में कौन कर सकता है? तमाम पंडित राजा ने इकठ्ठा किये, वे बोले – एक भी व्यक्ति कलियुग में ऐसा नहीं है जो अश्वमेध यज्ञ कर सके। उसी समय एक बुढ़िया आयी और बोली कि इस विमान को मैं स्वर्ग भेज दूँगी। सब लोग हट गए और उसने हाथ में जल लेकर कहा – मैं रोज ठाकुर जी की सेवा के लिए जल लाती हूँ, एक कदम चलने का पुण्य इसे दे रही हूँ। एक कदम चलने का पुण्य दिया, संकल्प पढ़कर उसने जल छोड़ा तो उसी समय आकाश में देवता सहित विमान उड़ गया। तब *उसने कहा-* ***'भगवद्सेवा से बड़ा यज्ञ कुछ नहीं है।'***

आज हम लोग सेवा से चोरी करते हैं, कहीं शरीर में कोई कष्ट न हो, सेवाविहीन हैं सब लोग। नारद पुराण में लिखा है – भक्त के मुर्दा शरीर में वह शक्ति है कि सबको पवित्र कर देता है और पापी के

मुर्दा शरीर में वह शक्ति है कि उसके छूने से पाप लग जाता है। इस तरह बुढ़िया ने अपनी भगवत्सेवा के एक कदम का पुण्य उस देवता को दिया और वह फिर से स्वर्ग में चला गया। हमलोग श्रद्धाहीन हैं, कमजोर हैं, शरीर की सेवा भी नहीं कर सकते हैं। इसलिए सर्वभाव शरणागति नहीं है। केवल शरीर में आलस्य, प्रमाद यही सब भरे पड़े हैं। यदि सच्ची शरणागति विशुद्ध भक्त में हो जाय तो भगवान् मिल ही गये। भगवान् की शरणागति से भी बड़ी है भक्त की शरणागति।

महत्-चरण-रज से निर्गुणा भक्ति का अवतरण

परीक्षित जी ने शुकदेव जी से प्रश्न किया? –

स कथं धर्मसेतूनां वक्ता कर्ताभिरक्षिता ।
प्रतीपमाचरद् ब्रह्मन् परदाराभिमर्शनम् ॥

(भा. १०/३३/२८)

परीक्षित ने पूछा– भगवान् ने पराई स्त्रियों के साथ रास-विलास, नृत्य-गान क्यों किया? जबकि धर्म की जितनी मर्यादाएँ हैं, उसके (वक्ता) उपदेश करने वाले स्वयं भगवान् हैं। जो जैसा कहता है, वैसा ही क्रिया में करने लग जाये, तो वह धर्म का रक्षक बन जाता है। तीनों का जोड़ा है, पहला है वक्ता, उसके बाद दूसरा है कर्ता, तीसरी श्रेणी है अभिरक्षिता। यह एक बहुत बड़ा प्रश्न भी है और एक बहुत बड़ी शिक्षा भी है। जब मनुष्य जैसा कहता है, वैसा ही करने लग जाये; लेकिन होता ये है कि हम लोग केवल भाषण करते हैं और क्रिया वैसी नहीं है। केवल त्याग की बात करते हैं और स्वयं संग्रही हैं। अगर सच्चाई से त्याग करने लग जाएँ, तो धर्म के रक्षक बन जाएँगे।

आज हमारे समाज में ये बात नहीं है, खाली भाषण देते हैं और क्रिया वैसी नहीं रहती है। इसलिए कोई चमत्कार सामने नहीं आता है, अगर सच्चा त्याग होता है तो वह धर्म का रक्षक बन जाता है। वक्ता तो बहुत हैं जो भाषण देते हैं कि त्याग करो, भोगों को छोड़ो और स्वयं लड्डू, पेड़ा, कचौड़ी, पैसा, भोग आदि छोड़ नहीं पाते हैं। वक्ता में व्यवहारिक क्रिया नहीं है, इसलिए वह सच्चा रक्षक नहीं बन पाता है। यदि जैसा बोलते हैं, वैसा करने लग जायें, तो समाज व धर्म के सच्चे रक्षक बन जायेंगे। समाज की ये स्थिति है कि जितनी कथाएँ होती हैं, उनमें धर्म को व्यापार बना देते हैं

लोग, मंच पर घोषणा की जाती है कि इन्होंने दो लाख दिया, इन्होंने चार लाख दिया, एक वासनाओं का नंगा प्रदर्शन होता है।

कथा तो भगवान् के लिए होती है, पैसे के लिए नहीं होती है। इसलिए मनुष्य जितना छोड़े, सच्चाई के साथ छोड़े, ऐसा नहीं कि हम छोड़ रहे हैं कि हमारा नाम हो जाय, इस वासना के साथ नहीं छोड़ो। अगर दम्भ आ गया तो भक्ति तामसी हो गयी। देखो, आज सारे समाज में दम्भ (दिखावापन) ज्यादा है। कपिल भगवान् ने कहा है कि मनुष्य गलती करता है, अपनी भक्ति को कमजोर बना लेता है। उन्होंने भक्ति के भेद बताये कि किस तरह हमारी भक्ति राजस, तामस, सात्विक हो जाती है। सबसे पहले बताया कि भक्ति तामस कैसे हुई?

अभिसन्धाय यो हिंसां दम्भं मात्सर्यमेव वा ।
संरम्भी भिन्नदृग्भावं मयि कुर्यात्स तामसः ॥

(भा. ३/२९/८)

हम जो कुछ भजन-सेवा कर रहे हैं, उसका नाम तो है 'भक्ति' लेकिन वह कहीं तामसी भक्ति तो नहीं है? भगवान् बोले – लोग भक्ति करते हैं, लेकिन ज्यादातर लोग तामसी भाव में चले जाते हैं। **१. हिंसा** – किसी का ऐश्वर्य नष्ट करना हिंसा है, 'हिंसा' माने केवल मारना-पीटना ही नहीं है, किसी की बुराई करना, किसी की निंदा करना आदि ये सब हिंसा में आता है, पराई निन्दा सुनकर खुश हो जाना, दूसरे के पतन को देखकर के हँसना, ये सब हिंसा है। **२. दम्भ** (दिखावा) – कोई सेठ आया तो माला जोर-जोर से हिलाने लग गए कि वह समझे महाराज बड़े भजनानन्दी महात्मा हैं, ये सब दम्भ है। हम लोग जितना धर्म-कर्म नहीं करते उससे ज्यादा तो दिखाते हैं कि लोग हमारी तारीफ करें, हमारा सम्मान करें, ये सब दम्भ है। **३.मात्सर्य** (ईर्ष्या) – किसी की तारीफ हो रही है और हम सह नहीं पाए क्योंकि मत्सरता है। आज एक साधु दूसरे साधु को देखकर चिढ़ता है, एक कथाव्यास दूसरे कथाव्यास को

देखकर चिढ़ता है, ये सब मात्सर्य है। अतः ये तीनों चीजें भक्ति को तामसी बना देती हैं। इसलिए सावधान रहना चाहिए, नहीं तो जितना भी भजन किया, वह किया-कराया सब चौपट हो जाता है। भक्तियोग अनेक प्रकार का है।

भक्तियोगो बहुविधो मार्गैर्भामिनि भाव्यते ।
स्वभावगुणमार्गेण पुंसां भावो विभिद्यते ॥

(भा. ३/२९/७)

स्वभाव और गुणों के हिसाब से भक्तियोग बहुत प्रकार का हो जाता है। अगर हमारा स्वभाव तामसी है, तो हम जो भक्ति करेंगे वह तामस में बदल जायेगी। अगर हमारे में तमोगुण प्रधान है, तो हम जो कुछ करेंगे; जप, तप, कीर्तन, कथा वह सब तामस भक्ति में बदल जायेगा। उसको संसार में कोई भी बदलने वाला नहीं है, स्वयं भगवान् के वाक्य हैं। अधिकतर हम जैसे लोग तामसी हैं और समझ नहीं पाते, माला करते हैं और कहते हैं कि मैं चार लाख नाम जप करता हूँ, लेकिन चार लाख नाम जपने के पहले यह नहीं सोच पाते हो कि तुम्हारा स्वभाव कैसा है? तुम्हारा गुण कैसा है? कहीं तामस तो नहीं है? अगर स्वभाव और गुण तामस है, तो चार लाख नहीं, आठ लाख जप करते हो, वह सब तामस में बदल जायेगा।

ये बात समझ नहीं पाते हैं हम जैसे लोग और मिथ्या अहंकार बढ़ाते हैं कि हम इतने लाख जप करते हैं, हम इतना पाठ करते हैं, हम इतना कीर्तन करते हैं, हम इतना दान करते हैं, हम इतनी सेवा करते हैं। इससे कुछ नहीं होगा, तुम्हारा स्वभाव कैसा है? तुम्हारे में गुण कैसा है? ये भी तो विचार करो, यह विचार करने की फुरसत नहीं किसी को, अपने–आपको देखने का विवेक नहीं है कि हम अपने विवेक से अपने को समझें। किस समय हमारा स्वभाव तामसी बना? किस समय राजसी बना? किस समय सात्विक बना? यह सोचना, इसको विवेक कहते हैं। विवेक बिना पुजारी सारे जीवन घंटी हिलाता है मंदिर में और वही थाल पर नज़र

रखता है कि कितना पैसा आया, कितना चढ़ा। स्वभाव उसका राजस ही रहता है, यह स्वभाव तभी बदलता है जब किसी निष्किंचन महापुरुष की शरणागति होती है। प्रह्लाद जी ने कहा है –

"महीयसां पादरजोऽभिषेकं
निष्किञ्चनानां न वृणीत यावत् ॥"

(भा. ७/५/३२)

बिना महापुरुषों की शरणागति के स्वभाव कभी भी भगवान् की ओर नहीं जाएगा, क्योंकि स्वभाव हमारा विषय-भोगों में फँसा हुआ है, हमारी बुद्धि भगवान् में लग ही नहीं सकती है।

मतिर्न कृष्णे परतः स्वतो वा
मिथोऽभिपद्येत गृहव्रतानाम् ।
अदान्तगोभिर्विशतां तमिस्रं
पुनः पुनश्चर्वितचर्वणानाम् ॥

(भा. ७/५/३०)

मति कृष्ण में नहीं लगेगी, न दूसरे का संग करने से, न माला फेरने से, न स्वतः जो साधन करते हैं उससे। भगवान् में बुद्धि इसलिए नहीं लगेगी क्योंकि हमारी इन्द्रियाँ अन्धकार में जा रही हैं, हमलोग चबे को चबा रहे हैं, अनादिकाल से हम लोग भोग भोग रहे हैं। कुत्ता बने तो वहाँ भी कुतिया को ढूँढ़ते रहे, गधा बने तो वहाँ भी गधी को ढूँढ़ते रहे, चिर्रा बने तो वहाँ भी चिर्री को ढूँढ़ते रहे, चबे को चबा रहे हैं, थूके को चाट रहे हैं। इसलिए भगवान् में बुद्धि कैसे लग जाएगी? तो क्या करें? दिखाई पड़ता है कि बड़े-बड़े मंदिरों में भी जितने नामी मंदिर हैं, उसमें बड़े-बड़े लोग हैं, वे सारे जीवन भक्ति करते हैं और अन्तिम समय तक उनकी वृत्ति नहीं बदलती है, चाहे आचार्य हैं, चाहे कोई हों, वृत्ति तो तभी बदलेगी जब चबे को चबाया हुआ छोड़ देंगे, लेकिन छोड़ नहीं पाते हैं।

फिर कोई उपाय है? प्रह्लाद जी बोले – हाँ, एक उपाय है केवल निष्किंचन महापुरुषों की चरण रज में जाकर के स्नान करो, तब

जाकर के तुम्हारा स्वभाव बदलेगा, गुण छूटेंगे और तब तुम भक्ति करोगे तो वह सच्ची भक्ति होगी। तो ये तामस भक्ति हम जैसे लोग करते हैं, आपस में स्पर्धा (होड़) रहती है। ईर्ष्या-द्वेष, दम्भ-दिखावा यही सब रहता है और कुछ समाज में नहीं है, ये हमारा समाज ही विचित्र हो गया है। ये बीमारी दूर नहीं हो सकती है, केवल हमलोगों ने भक्ति को तामस कर लिया। अगर संरम्भी स्वभाव है तो भक्ति तामस हो जायेगी। छोटी-सी बात पर खीजना, गुस्सा करना, उदास होना इस स्वभाव को 'संरम्भी' कहते हैं। अब भक्ति राजस कैसे होती है –

विषयानभिसन्धाय यश ऐश्वर्यमेव वा ।
अर्चादावर्चयेद्यो मां पृथग्भावः स राजसः ॥

(भा. ३/२९/९)

बहुत भगवान् की पूजा-अर्चना की, बहुत विशाल भगवान् का छप्पन भोग लगाया, लेकिन उसमें कहीं तीन चीजें हैं, तो भक्ति राजस हो गई –

१. **विषय –** हम मंदिर में बैठे हैं, देख रहे हैं कौन-सी स्त्री सुन्दर है? ये क्या है? विषय है। हम मंदिर में बैठे हैं और ध्यान है पैसों पर, भगवान् को क्या हम ठग लेंगे? २. **यश** – नाम हो जाय, कोई भी अच्छा कार्य करते हैं यश की कामना लेकर करते हैं। ३. **ऐश्वर्य** (मालकियत) – दो-चार माला फेरकर हमलोग सिद्ध बन जाते हैं कि समाज में हमारा प्रभाव जमे, हमारा ऐश्वर्य बढ़े। हर आदमी मालकियत चाहता है; गुरु कहता है हमारी चलेगी, जैसे परिवार में होता है – स्त्री कहती है हमारी चलेगी, पति कहता है हमारी चलेगी, बेटा-बेटी कहते हैं हमारी चलेगी, ये सब ईशता का झगड़ा है। तो ये तीन चीजें भक्ति को राजस बना देती हैं, इसलिए भगवत रसिक जी ने लिखा कि भजन कहाँ-कहाँ नहीं करना चाहिए –

हाट, बाट, चौपाल जुर, देवल हाट मसान ।
भगवत जन विरमें यहाँ, होत भड़ाइ निदान ॥

इन जगहों पर भजन करेंगे और दृष्टि है कि वहाँ कौन आया? कौन गया? कौन आयी? ये सब मंदिर में, 'हाट' माने बाजार में ज्यादा होता है, इसलिए यहाँ भजन नहीं करना चाहिए, रास्ते में भजन नहीं करना चाहिए, शमशान में भजन नहीं करना चाहिए। सात जगह भजन नहीं करना चाहिए, ये महापुरुषों की वाणी है। फिर कहाँ करना चाहिए?

नदी किनारे गिरि शिखर बाग इको सो देख ।
भगवत जन विरमें यहाँ बाढ़इ भजन विशेख ॥

कोई नदी का किनारा हो या पर्वत की चोटी हो, जहाँ अपने आप चारों ओर दृश्य दिखाई पड़ता है या एकान्त बगीचा, वन हो, यहाँ अपने आप भजन बढ़ेगा।

इसलिए विषयों को छोड़ना ही पड़ेगा। चाहे चोरी से भोगो विषय, उससे नुकसान तुम्हारा ही है, चोरी करोगे तो राजस हो ही जायेगी भक्ति। राग तुम्हारा विषयों में बना हुआ है, तो वैराग्य कहाँ है? अब तीन चीजें सात्त्विक कर देती हैं भक्ति को –

कर्मनिर्हारमुद्दिश्य परस्मिन् वा तदर्पणम् ।
यजेद्यष्टव्यमिति वा पृथग्भावः स सात्त्विकः ॥

(भा. ३/२९/१०)

हमारे कर्म जल जायें, हम मुक्त हो जायें, इस वासना से भक्ति करोगे तो भक्ति सात्त्विक हो जाएगी, गुणातीत नहीं होगी। भगवान् को अर्पण करना, ये भी एक वासना है, जो भक्ति को सात्त्विक कर देगी। कोई भी अच्छी इच्छा भी है, वह भी ठीक नहीं है। तीसरा है 'पृथक भाव' पृथक भाव क्या है? भगवान् से अपने को अलग समझना यानी भगवान् उपास्य हैं, हम उपासक हैं। ये स्वार्थ है कि हमारे कर्म नष्ट हो जाएँ, हम अर्पण करें भगवान् को ये भी एक स्वार्थ

है। सूक्ष्म इच्छा होती है, पृथक भाव बना हुआ है तुम्हारा, इसलिए ये भी सात्त्विक भक्ति हो गई, गुणातीत भक्ति नहीं हुई है। अब निर्गुणा भक्ति कैसे होगी?

मद्गुणश्रुतिमात्रेण मयि सर्वगुहाशये ।
मनोगतिरविच्छिन्ना यथा गङ्गाम्भसोऽम्बुधौ ॥

(भा. ३/२९/११)

मन की गति टूटे नहीं, न तामस भाव आवे, न राजस भाव आवे, न सात्त्विक भाव आवे, कोई भाव आएगा तो तुम्हारी गति टूट जाएगी। अविच्छिन्न गति से केवल हम भगवान् की कथा सुन रहे हैं, कीर्तन सुन रहे हैं बिना किसी हेतु के। हेतु क्या है? सात्त्विक, राजस, तामस ये सब हेतु हैं।

लक्षणं भक्तियोगस्य निर्गुणस्य ह्युदाहृतम् ।
अहैतुक्यव्यवहिता या भक्तिः पुरुषोत्तमे ॥

(भा. ३/२९/१२)

किसी हेतु से भक्ति मत करो, न राजस हेतु, न तामस हेतु और न सात्त्विक हेतु। तामस हेतु - हिंसा, दम्भ, मात्सर्य। राजस हेतु - विषय, यश, ऐश्वर्य। सात्त्विक हेतु – कर्मनिर्हार या भगवान् में अर्पण होने की कोई वासना या स्वार्थ रखना ये सब सात्त्विक हेतु हैं। किसी हेतु को लेकर भक्ति मत करो। देखते रहो कि हमारे अन्दर कोई हेतु तो नहीं है, राजस हेतु तो नहीं आया है, तामस हेतु तो नहीं आया है, सात्त्विक हेतु तो नहीं आया है। राजस, तामस तो समझ में आ जाता है पर सात्त्विक हेतु क्या है?

सालोक्यसार्ष्टिसामीप्यसारूप्यैकत्वमप्युत ।
दीयमानं न गृह्णन्ति विना मत्सेवनं जनाः ॥

(भा. ३/२९/१३)

हम भगवान् के धाम में जावें, भगवान् के समीप पहुँचें ये सालोक्य मुक्ति है। भगवान् के समान ऐश्वर्य मिल जाये, ये सार्ष्टि है। हर समय भगवान् के पास रहें, ये सामीप्य है। सारूप्य – उनके

समान रूप हो जाये; ये चार प्रकार की मुक्तियाँ हैं, ये सब सात्त्विक हैं, ये देने पर भी भगवान् के भक्त नहीं लेते, क्यों? वह तो केवल चाहते हैं सेवा। सेवा कैसी? अहैतुकी सेवा, सेवा करते समय देखते रहो कि कहीं दम्भ (दिखावा) तो नहीं आ गया, मात्सर्य तो नहीं आ गया, कहीं क्रोध तो नहीं आया, किसी का अनादर तो नहीं हुआ, किसी की उपेक्षा तो नहीं भई, किसी के प्रति द्वेषभाव तो नहीं आया, किसी का अपमान तो नहीं हुआ, ये सब सेवा करते समय देखते रहना चाहिये, ये बात 'भिन्न-भाव' में आती हैं।

भिन्न भाव में ये चार बातें आती हैं। जैसे राख में तुमने हवन किया तो वह सब नष्ट हो गया वैसे ही किसी की उपेक्षा करोगे तो तुम्हारी भक्ति सब मिट्टी में मिल जाएगी। जैसे – एक उदाहरण देखो - रूप गोस्वामी जी भजन कर रहे थे, उनको भगवल्लीला का अनुभव होता था अर्थात् भगवान् की लीला दिखाई पड़ती थी ध्यान में। एक दिन वह लीला चिंतन कर रहे थे तो उनके सामने एक लंगड़ा महात्मा जा रहा था, उनको पता नहीं था। वह लीला देख रहे थे कि ठाकुर जी ने कहा श्रीजी से कि बहुत सुन्दर पुष्प हैं। श्रीजी ने कहा – मैं तोड़ दूँगी, तुम हमको उठा लो, उठाया ठाकुर जी ने, श्रीजी ने डाल को पकड़ा और चंचल हैं ही ठाकुर जी, उन्होंने छोड़ दिया डाल, श्री जी ऊपर उठ गयीं।

ठाकुर जी की इस चंचलता को देखकर रूप गोस्वामी हँसने लग गए, देखो, श्रीजी डाल पकड़ के ऊपर उठ गयीं हैं, टंगी हैं, ये क्या खेल किया ठाकुर जी ने, वह हँसे उस लीला को देखकर के और उस ब्राह्मण ने समझा कि हम लंगड़े हैं, इसलिए हमारे ऊपर हँस रहे हैं, दुःखी हो गया, तो उसी समय उनको लीला दिखाई देना बंद हो गया। वह बहुत दुःखी हुये, बड़े भाई सनातन जी के पास गए, बोले – भैया ! ये क्या हुआ? हमको तो लीला दिखती थी, अब नहीं दिख रही है। उन्होंने कहा जरूर तुमसे किसी भक्त का

अपराध हुआ है। वह बोले – तो मैं क्या करूँ? हमने तो किसी का जान बूझकर के अपराध किया नहीं, अनजान में हुआ है। सनातन जी बोले – अच्छा एक उपाय है "तुम सबको निमंत्रण दो और सभा के बीच में क्षमा माँगो कि अगर मेरे किसी आचरण से किसी के मन में दुःख हुआ हो तो मुझे क्षमा करो।"

उन्होंने (रूप गोस्वामी जी ने) पंगत की, उसमें वह लंगड़ा साधु भी आया था। रूप गोस्वामी जी खड़े हुये और बोले – "हमसे अगर किसी का अपराध हुआ हो तो हमें क्षमा कर दो।" तब वह लंगड़ा बोला –" हाँ, तुम हँसते हो हमारे लंगड़ेपन पर" वह समझ गए, इसी को दुःख हुआ है तो उसके चरणों में गिरे, क्षमा माँगी।

इसीलिये अपराध से बचना चाहिए, भजन नष्ट कैसे होता है? भगवान् ने कहा – मैं ही सब प्राणियों के भीतर स्थित हूँ, अगर किसी की अवज्ञा (उपेक्षा) हो गयी तो मेरी हो गयी। ये सब पृथक भाव में होता है, पृथक भाव होने पर ही – अनादर, उपेक्षा, द्वेष, अपमान होता है, अतः इन चारों से दूर रहोगे तब गुणातीत भक्ति होगी।

एक भयावह दृश्य भवसागर की यात्रा का

काम-कातर व्यक्ति काम के पीछे मर जाता है, आत्महत्या कर लेता है। बहुत-सी ऐसी घटनाएँ देखी जाती हैं। काम-कातर व्यक्ति इतना व्याकुल हो जाता है कि जीने-मरने की परवाह नहीं करता है। देखो, हम सभी काम-कातर हैं। ऐसा कोई नहीं है जो काम-कातर न हो। अपनी कातरता को हम लोग समझ नहीं सकते। यह हम सबको समझना चाहिए क्योंकि काम-कातर व्यक्ति प्राण छोड़ देता है, मर जाता है, आत्महत्या कर लेता है, घर से भाग जाता है। जाने कितने लड़के-लड़कियाँ घर से भाग जाते हैं काम-कातर होने के कारण। श्रीमद्भागवत में कथा है – दक्ष के यज्ञ में जब भगवान् प्रगट हुए तो वहाँ सदस्यों ने उनकी स्तुति में कहा –

उत्पत्त्यध्वन्यशरण उरुक्लेशदुर्गेऽन्तकोग्र-
व्यालान्विष्टे विषयमृगतृष्यात्मगेहोरुभारः ।
द्वन्द्वश्वभ्रे खलमृगभये शोकदावेऽज्ञसार्थः
पादौकस्ते शरणद कदा याति कामोपसृष्टः ॥

(भा. ४/७/२८)

यह भागवत का अनोखा श्लोक है, इसमें संसार के स्वरूप का वर्णन किया गया है। संसार में हर आदमी काम-कातर है, इसीलिए आज तक भगवान् से मिल नहीं पाया। अनादिकाल से जिस जीवन यात्रा में हम लोग चल रहे हैं, अपनी जीवन यात्रा को आज तक समझ नहीं पाये, अंधे बनकर चल रहे हैं। 'उत्पत्ति' माने जब से संसार चला है।

'जिव जबतें हरितें बिलगान्यो,
तबतें देहगेह निज जान्यो ।'

जब से इस शरीर को हमने अपना समझा, तभी से हम भगवान् से अलग हो गये, जब से यह संसार बना तभी से अर्थात्

अनादिकाल से। कैसा रास्ता है? *'उरुक्लेश'* इतने क्लेश हैं इसमें कि चलना मुश्किल है। भूल गया आदमी कि हम भगवान् के अंश हैं। भवयात्रा में बालकपन, जवानी, बुढ़ापा आदि इन सबका वर्णन किया गया है। जब जीवन-यात्रा खत्म होगी, तब भगवान् मिलेंगे। यह जीवन-यात्रा तब खत्म होगी, जब विशुद्ध संत मिलेंगे।

संसार-यात्रा कैसी है?

'अशरण' जैसे समुद्र में तुमको फेंक दिया गया और वहाँ लहरों के सिवाय कोई रुकने की जगह नहीं है, वैसे ही इस संसार में कहीं रुकने की जगह नहीं है। चलते रहो - चलते रहो। *'अशरण'* का उदाहरण सूरदास जी ने दिया है –

मेरौ मन अनत कहाँ सुख पावै।
जैसैं उड़ि जहाज को पच्छी, फिरि जहाज पर आवै॥

'जहाज पर कोई पक्षी बैठा था, वह पक्षी समझ नहीं पाया कि यह समुद्र का जहाज है, जहाज चल पड़ा। पक्षी उड़ता है लेकिन पानी में चारों तरफ कहीं बैठने की जगह नहीं है तो उड़कर फिर जहाज पर वापस आ जाता है।' यह 'अशरण' का उदाहरण है। इस जीवन-यात्रा में भी कहीं बैठने की, रुकने की जगह नहीं है। बस चलते रहो, जन्म हुआ फिर मरण हुआ, जन्म हुआ फिर मरण हुआ, बस चलते रहो कहीं रुकने की जगह नहीं है। *'उरुक्लेश'* 'उरु' माने ज्यादा, क्लेश ही क्लेश हैं; जन्म है तो क्लेश है, मरण है तो क्लेश है, जवानी है तो क्लेश है, बुढ़ापा है तो क्लेश है। ऐसी कोई जगह नहीं है, जहाँ पर मनुष्य शरण ले ले। इस जीवन-यात्रा में *'अन्तक'* एक काल रूपी उग्र व्याल (अजगर) है, वह हर समय मुँह फाड़कर पीछे लगा हुआ है। जीव भाग रहा है वह पीछा कर रहा है। हम रोटी क्यों खाते हैं? मर न जाएँ, काल से बचने के लिए। पानी क्यों पीते हैं? प्यासे मर जाएँगे, मृत्यु से बचने के लिए पानी पीते हैं। कपड़ा क्यों पहनते हैं? बीमार पड़ जाएँगे, मर जाएँगे। हर क्रिया हम

काल से बचने के लिए कर रहे हैं। मकान क्यों बनाते हैं? काल से बच जाएँ। चारपाई पर क्यों सोते हैं? सर्प आदि न खा जाएँ। इसलिए काल रूपी उग्र व्याल (अजगर) हर समय हमारा पीछा कर रहा है और इस यात्रा में 'मृगतृष्णा' है। भोगों में ऐसा लगता है कि सुख है। जैसे हिरन दौड़ता है रेगिस्तान में बालू पर इस आशा से कि वहाँ पानी मिलेगा, वहाँ पानी मिलेगा। वहाँ पानी नहीं है, सूर्य की किरणें हैं, वे जब बालू पर पड़ती हैं तो दूर से दिखायी पड़ता है कि पानी है। इसको 'मृगतृष्णा' कहते हैं। दौड़ते-दौड़ते हिरन मर जाता है, वह सोचता है – वहाँ पानी है, वहाँ पानी है, वहाँ सुख है - वहाँ सुख है।

इसी तरह हम लोग मृगतृष्णा में फँसे हैं। बच्चा पैदा हुआ तो सोचते हैं अब सुख मिलेगा, अब बच्चा बड़ा होगा, वहाँ सुख है परन्तु सुख कहीं है नहीं। इसको मृगतृष्णा कहते हैं। इस संसार में कहीं भी सुख नहीं है। सुख की आशा से मनुष्य ब्याह करता है, सुख की आशा से बच्चे पैदा करता है, सुख की आशा से बच्चों का पालन-पोषण करता है और सुख कहीं नहीं है। सुख पाने के चक्कर में, घर में तमाम सामग्री इकट्ठी करते-करते मर जाता है – फ्रिज है, टेलीविजन है, गाड़ी है आदि; जबकि इनसे सुख मिलेगा, यह मृगतृष्णा है। *'आत्मगेहोरुभारः'* 'आत्म' माने शरीर और 'गेह' माने घर, । शरीर और गृहस्थ का बोझ लेकर के चल रहा है, *'उरुभारः'* बहुत ज्यादा वजन है। गृहस्थ का वजन कम नहीं है। बेटा हुआ, बेटी हुई, उनका ब्याह करो। बेटे के भी बेटे पैदा हो गये, लड़कियों के भी लड़के पैदा हो गये। बोझ बढ़ता जाता है, आज भार थोड़ा-सा है, कल दोगुना हो जाएगा।

मनुष्य के दो पाँव हैं; जब ब्याह हुआ तो चौपाया बन गया, दो पाँव अपने और दो अपनी बहू के, चार पाँव वाला पशु बन गया। अब लड़का पैदा हुआ तो भौंरा बन गया, उसके छः पाँव होते हैं।

फिर एक लड़की और हुई तो मकड़ी बन गया। मकड़ी के आठ पाँव होते हैं। इसी तरह परिवार बढ़ते-बढ़ते फिर वह काँतर बन जाता है, जिसके सैकड़ों पाँव होते हैं। इस तरह से वह विषाक्त गोजर (कांतर) बन गया। इसीलिये लिखा है *'उरुभारः' यानी* वजन बढ़ता गया। इस संसार में वजन घटता नहीं है। कभी भी किसी का वजन नहीं घटा। सोचता है नौकरी लग गयी, अब लड़का कमाएगा, पत्नी को भी नौकरी में लगा दिया, सोचता है वजन घटेगा लेकिन वजन घटता नहीं है। संसार में वजन बढ़ता रहता है और वजन जब बढ़ता जाता है तो ज्यादा वजन के कारण कहीं गिरेगा, यदि किसी के ऊपर ज्यादा बोझ लाद तो आदमी कैसे चलेगा, किसी न किसी गड्ढे में गिरेगा जरूर। *'द्वंद्वश्वभ्रे' राग-द्वेष रूपी* गड्ढे में गिरता है क्योंकि वजन बहुत बढ़ गया है। राग-द्वेष के गड्ढे क्या हैं? भाई-भाई में बँटवारा हो गया, लड़ाई हो जाती है। तेरे हिस्से में ज्यादा आया, मेरे हिस्से में कम आया। देवरानी–जिठानी लड़ने लग जाती हैं। यहाँ तक कि माँ-बाप भी अलग हो जाते हैं, बेटा को पैदा किया था कि सेवा करेगा बुढ़ापे में लेकिन वह बेटा 'माँ-बाप' को अलग कर देता है या वृद्धाश्रम में भेज देता है क्योंकि वजन बढ़ गया तो गड्ढे में गिरेगा। गड्ढे में गिरने से क्या होता है? *'खलमृगभये'* उस गड्ढे के अन्दर दुष्ट जानवर बैठे हैं खाने के लिए, वे खा जाएँगे – अनेक सर्प, अजगर, शेर-चीते भरे पड़े हैं। दुष्ट जानवर क्या हैं? राजा बलि ने कहा कि बचपन में मेरे बाबा प्रह्लाद जी ने मुझे शिक्षा दी थी इसलिए मैं इन जानवरों से बच गया, संसार के चक्कर में नहीं पड़ा –

किमात्मनानेन जहाति योऽन्ततः
किं रिक्थहारैः स्वजनाख्यदस्युभिः ।
किं जायया संसृतिहेतुभूतया
मर्त्यस्य गेहैः किमिहायुषो व्ययः ॥

(भा. ८/२२/९)

उन्होंने शिक्षा दी थी कि बेटा ! यह शरीर एक दिन तुमको छोड़ जाएगा। यह शरीर धोखेबाज है। इस शरीर से प्रेम मत करना। अपने शरीर से हम लोग प्रेम करते हैं, इसीलिए मर रहे हैं और हम जिनको अपना बेटा-बेटी व स्त्री मान रहे हैं, वे डाकू हैं, सारा जीवन लूट लेते हैं। तुमने ब्याह किया, अब सारे जीवन पत्नी को रोटी खिलाओ, नौकरी करो नौकर की तरह, वह पत्नी डाकिनी है, बेटा-बेटी डाकू हैं, उनके लिए मकान बनाओ, कमाओ। इनको छोड़ दो, ये सब डाकू हैं। बोले – स्त्री तो डाकू नहीं है। बोले – वह तो नागिन है, संसार-चक्र में लाने के लिए वही तो एक रास्ता है, जहाँ से निकलो, वहाँ ही घुसो उसी योनि मार्ग में, स्त्री तो सबसे खतरनाक है। बोले – घर? घर तो एक गुफा है, जैसे गुफा में चूहा सारा जीवन काट लेता है। इसी तरह मनुष्य घर बनाता है और सारा जीवन उसी में काट लेता है कि हम अपनी छत के नीचे बैठे हैं, खुश होता है।

इसलिए यहाँ पर जो संसार यात्रा का वर्णन किया गया, सदस्य लोग कहते हैं – हे दीनबन्धु ! इस संसार में रुकने की कोई जगह नहीं है। क्लेश ही क्लेश हैं। उग्र व्याल अजगर पीछा कर रहा है। तुम कितना भी मकान बनाओ, काल आएगा ले जाएगा। कितनी भी दवाई खा लो, खाते-खाते मर जाओगे और अंत में गड्ढे में गिर जाओगे। राग-द्वेष के गड्ढे हैं। उसमें दुष्ट जानवर, जो डाकू हैं स्त्री-पुत्र आदि, ये खा जाएँगे तुमको और उस गड्ढे में आग जल रही है, उस गड्ढे में जलते रहोगे। आग क्या है? शोक की आग, दुःख-शोक जो मन में रहता है – 'आज हमारा बेटा बीमार हुआ, आज बहू बीमार है, बहू मर गयी, आज हमारे पास पैसा नहीं है, आज यह नहीं है, वह नहीं है।' इस शोक की आग में जलते रहोगे। बचने के लिए किसी का साथ ढूँढ़ोगे लेकिन सारा समुदाय अज्ञानियों का है,

माता-पिता, स्त्री-पुत्र आदि सब अज्ञानी हैं। फिर कैसे बचेंगे? एक रास्ता है –

भगवान् के चरणकमल हमारे घर थे, जहाँ से हम चले थे, जब तक हम उन्हीं के चरणकमलों में नहीं पहुँचेंगे तब तक इसी तरह चलते रहेंगे। फिर पहुँच जाओ अपने घर में। भगवान् तो इतने दयालु हैं शरणागतपालक हैं, किसी को ठुकराते नहीं हैं, सदा ही शरण देते हैं लेकिन उनकी शरण में नहीं जाता है जीव, कभी नहीं जाता *'कामोपसृष्टः'* कामनाओं के कारण से। अनेक प्रकार की कामनाओं में फँसने के कारण भगवान् के चरणों में नहीं जाता है। साधु बन गया, तब भी कामनाएँ हैं – आश्रम बनावें, पैसा इकट्ठा करें। गृहस्थ है तो भी कामनाएँ हैं – स्त्री के लिए मकान बनावें, बेटा-बेटी के लिए धन-सम्पत्ति कमाकर रख जाएँ। कामनाएँ भगवान् से दूर करती हैं। जिसको भगवान् से मिलना है, वह कामनाओं की बीमारी हटा दे।

इसीलिये हर आदमी काम-कातर हैं, वासना-पूर्ति के लिए मनुष्य धन इकट्ठा करता है, ब्याह करता है, घर बसाता है। लड़की सोचती है – हमारा ब्याह हो जाए, लड़का सोचता है – घरवाली आ जाए तो सुख आयेगा। यह क्या है? *'कामोपसृष्टः'* यह कामना उसे अनन्त आग के गड्ढे में ले जाएँगीं, जिस गड्ढे में सदा जलता रहेगा। *'शोकदावेऽज्ञसार्थ'* ऐसा गड्ढा है कि उसमें हर समय आग जलती रहती है। किसी भी समय आग बुझती नहीं है। गृहस्थ क्या है? कामना की पिटारी है। लड़का पैदा हुआ – अब लड़के के लिए खिलौना लाओ, लड़का चलेगा तो उसके लिए लोग गाड़ी खरीदते हैं। फिर बड़ा हुआ तो स्कूल में दाखिला कराओ, स्कूल में दाखिल कराया तो स्कूल ड्रेस चाहिए, किताब चाहिए, फीस चाहिए, कामनाएँ बढ़ती रहती हैं; इसी तरह से लड़की है, उसके लिए अभी से पैसा इकट्ठा करेंगे ब्याह के लिए और ब्याह सहज नहीं है

आजकल। तुलसीदास जी ने लिखा है – **'गृह कारज नाना जंजाला'** सैकड़ों जाल हैं गृहस्थ में।

इसीलिए स्वामी विवेकानन्द ने लिखा है –

"An unmarried person is half free from the world"

'जो अविवाहित व्यक्ति है, वह आधा भवसागर पार हो गया।'

घर में स्त्री आयी तो अब स्त्री के लिए अधिक सुरक्षा चाहिए, मकान बनाना पड़ेगा। स्त्री के लिए अधिक सामान चाहिए, आभूषण चाहिए, अलग कपड़े चाहिए; ये सब चीजें उसे अनेक जालों में फँसा लेती हैं। जीव कभी भगवान् की शरण में नहीं पहुँच पाता है। कामनाएँ सदा बढ़ती जाती हैं, समझता नहीं प्राणी। एक कहावत है –

"रड़ुआ दै दै तारी हँसे, मुसीबत बइयर वाले की"

जिसका ब्याह नहीं हुआ है, वह हँस रहा है कि देखो इसको कितनी मुसीबत है, वह कहता है – भले भये हम 'बाबा जी' बन गये, नहीं तो ससुराल गये बिदा कराने, बहू पीछे-पीछे आ रही है और बच्चा काँधे पर चढ़ा हुआ है क्योंकि पैदल नहीं चल सकता।

जीव काम-कातर है, परिस्थितियाँ सामने आती हैं और इसको समझ नहीं पाता, कामनाओं के जाल में उलझता जाता है और सदा के लिए भगवान् से दूर चला जाता है। ये सब अनर्थ हैं, अनर्थ क्यों हुआ? कामना-पूर्ति की इच्छा थी। कोई जीवन साथी मिले – लड़का भी सोचता है, लड़की भी सोचती है। जबकि जीवन-साथी भगवान् के अलावा और कोई नहीं है। मीराबाई ने कहा है –

"म्हारे जनम मरण रा साथी,
थाँने नहिं बिसरूँ दिन राती।"

अरे मनुष्यों, साथी किसको बनाते हो। कोई मनुष्य किसी का साथी न था, न है और न होगा। जब तुम पैदा हुए थे तो अकेले पैदा हुए थे, क्या किसी साथी को लेकर पैदा हुए थे? नहीं, लेकिन फिर भी जीव साथी बनाता है, दोस्त बनाता है, बच्चों के साथ खेलता है, फिर जवानी में स्त्री को साथी बनाता है; ये सब साथी झूठे हैं क्योंकि जन्म के समय ये साथ नहीं थे और जब मरोगे तो भी अकेले मरना पड़ेगा। **साथी एकमात्र भगवान् हैं,** जो जन्म के समय साथ थे, मरोगे तो भी साथ रहेंगे। उस वास्तविक साथी को लोग भूल जाते हैं। नकली व्यक्ति को साथी बनाकरके, इन मुर्दों को साथी बनाते हैं जो आज नहीं कल बिछुड़ जाएँगे और उस असली साथी को लोग भूल जाते हैं। यही बात भागवत में जाने कितनी जगह कही गयी है कि साथी एकमात्र अविनाशी भगवान् को बनाना चाहिए क्योंकि कभी उसका संग छूटता नहीं है। हमलोग नकली लोगों को साथी बनाते हैं, जो थोड़ी देर में बिछुड़ जाते हैं। जितने भी सम्बन्ध हैं, वह सब नकली सम्बन्ध हैं। भगवान् को साथी बनाओ, जो अविनाशी है। मनुष्यों का साथ पकड़ते हो, इसीलिए तुम मारे जाते हो।

न कर्हिचिन्मत्पराः शान्तरूपे
नङ्क्ष्यन्ति नो मेऽनिमिषो लेढि हेतिः ।
येषामहं प्रिय आत्मा सुतश्च
सखा गुरुः सुहृदो दैवमिष्टम् ॥

(भा. ३/२५/३८)

जो भगवान् के परायण हैं, केवल भगवान् से प्रेम है, स्त्री परायण नहीं, पति परायण नहीं, भगवान् के जो परायण हैं वह कभी नष्ट नहीं होगा। काल उसको कभी चाट नहीं सकेगा। जो कालचक्र है, कभी भी उसको चाट नहीं सकता, खा नहीं सकता। स्वयं कपिल

भगवान् ने कहा कि जिनका प्यारा मैं हूँ, आत्मा मैं हूँ, बेटा-बेटी मैं हूँ, सखा मैं हूँ, यहाँ तक कि गुरु भी मैं हूँ। गुरु भी झगड़ा है। गुरु कहता है – हमको इतना भेंट लाओ। गुरु भी भगवान् को मान लो। सुहृद मैं हूँ, हितैषी मैं हूँ, दैव मैं हूँ, इष्ट मैं हूँ, इष्टदेव मैं हूँ। बेटा-बेटी भगवान् हैं, स्त्री भगवान् हैं, मित्र भगवान् हैं, जो ऐसा मान लेगा फिर काल जो पीछा कर रहा है वह खतम (समाप्त)। अब काल कभी भी तुमको चाट नहीं पाएगा। उत्तरा ने यही कहा था, जब अश्वत्थामा ने ब्रह्मास्त्र छोड़ा उत्तरा के गर्भ पर, उत्तरा श्रीकृष्ण की शरण में गयी और बोली –

पाहि पाहि महायोगिन् देवदेव जगत्पते ।
नान्यं त्वदभयं पश्ये यत्र मृत्युः परस्परम् ॥

(भा. १/८/९)

हे देव ! तुम्हारे अलावा कहीं अभय नहीं है, चाहे स्त्री है, चाहे पति है, चाहे मित्र है, चाहे गुरु है। हम लोग परस्पर एक-दूसरे से प्रेम करते हैं। यह हमारा बेटा है, यह हमारी बेटी है, यह हमारी बहू है, यह हमारा पति है, इनसे प्रेम करना, सम्बन्ध जोड़ना मौत है। उत्तरा बच नहीं सकती थी, क्योंकि ब्रह्मास्त्र पूरे ब्रह्माण्ड को जला सकता है। उत्तरा ब्रह्माण्ड में कहीं भी जाती तो मारी जाती लेकिन वह भगवान् की शरण में पहुँच गयी तो बच गयी। अतः ये सब भक्ति के अनर्थ हैं, संसार में कहीं भी किसी भी वस्तु, व्यक्ति में आसक्ति हुई तो मनुष्य का पतन हो जाता है। शुकदेव जी ने भागवत में पहली शिक्षा यही दी कि कहीं भी आसक्ति मत करो –

तं सत्यमानन्दनिधिं भजेत
नान्यत्र सज्जेद् यत आत्मपातः ॥

(भा. २/१/३९)

एकमात्र सत्यस्वरुप, आनन्द स्वरुप भगवान् का भजन करो। हम साधु बन गये तो कहते हैं – यह हमारा आश्रम, हमारी कुटिया, हमारे चेला-चेली। कहीं भी आसक्ति करोगे तो शीघ्र पतन होगा,

निश्चित मरेंगे। यह पहली शिक्षा शुकदेव जी ने दी। भगवान् के अलावा दो पैसा में भी आसक्ति मत करो। हमारा कपड़ा है, हमारा मकान है, हमारी स्त्री, हमारे बेटा-बेटी; इनमें आसक्ति करना यह आत्मपात है, आत्मनाश है। बात कड़वी है लेकिन बात सच्ची है, किसी गृहस्थ से जाकर कहो कि तू अपनी स्त्री से प्रेम करेगा तो मरेगा तो उसको बुरा लगेगा। किसी स्त्री से कहो कि तू अपने पति से प्रेम करेगी तो मरेगी, तो उसको बुरा लगेगा कि हमारे घर में फूट डाल रहे हैं। लेकिन इस बात को शुकदेव जी कह रहे हैं, केवल सन्त लोग ही सही बात कहते हैं। भगवान् के अलावा किसी भी स्थान में, किसी भी वस्तु में, किसी व्यक्ति में, किसी जीव में, किसी चीज में जरा भी आसक्ति रहेगी तो आत्मनाश निश्चय है।

जीवन की सार्थकता

सच्चे भक्त भगवद्भजन छोड़कर एक क्षण भी व्यर्थ नहीं गँवाते। हम लोग कोई भजनानन्दी नहीं हैं, थोड़ी देर भजन-साधन करते हैं, फिर सोचते हैं कि भजन हो गया। 'भजन' तो वह है कि जीवन का एक भी क्षण भगवान् के बिना न जाए, उसको कहते हैं 'भजन'।

जब मनुष्य मरने लग जाता है तब वह तीनों लोकों की संपत्ति भी यदि घूस में दे दे लेकिन फिर भी एक स्वांस भी उसकी बढ़ नहीं सकती है। इसलिए महापुरुषों ने कहा है कि तीन लोक की संपत्ति अगर जाती है तो जाने दो लेकिन भगवान् के भजन बिना स्वाँस को वृथा नष्ट मत करो।

तीन लोक की सम्पदा, स्वांस सम नहिं होय।
सो स्वांसा रघुनाथ बिन, तुलसी वृथा न खोय॥

अथवा

दो बातन को भूल मत, जो चाहै कल्यान।
नारायन एक मौत को, दूजे श्री भगवान्॥

एक अपनी मौत को याद रखो कि थोड़ी देर में हम इस संसार से चले जायेंगे, दूसरा उस मृत्यु से बचाने वाले भगवान् हैं, उसको याद रखो। जो स्वाँस चली गयी, वह कभी भी नहीं लौटेगी, संसार में कोई भी उस स्वाँस को लौटा नहीं सकता। जैसे अंजलि में पानी लो, टप-टप बूँद गिरती रहेगी, रोक नहीं सकोगे, जो बूँद चली गयी फिर लौटेगी नहीं। इसलिए संत कहते हैं –

'अगर' कहाँ लगि थेगरी दीजै फाटे आग ।
आगि लगते झोपड़ा जो निकसै सो लाभ ॥

अरे ! झोपड़ी में आग लगने से पहले ही भगवान् की शरण में चले जाओ। यह 'झोपड़ी यानी शरीर' एक दिन चिता में जलेगा जरूर, इसलिए जलने के पहले भगवान् की शरण पकड़ लो। स्वाँस जाने के बाद शरण नहीं मिलेगी। दिन-रात आयु घट रही है, आज का दिन चला गया, वह फिर कभी नहीं लौटकर आएगा। जो ये क्षण जा रहे हैं, कभी पुनः वापिस नहीं आएँगे, इनको दुनिया में कोई नहीं लौटा सकता। जैसे चूहा उछलता है, वह ये नहीं देखता कि बिल्ली एकदम से आकर खा जायेगी। जिस समय बिल्ली चूहे को पकड़ लेती है, फिर छोड़ती नहीं है, सीधे मुँह में रखकर खा जाती है; वैसे ही काल जब पकड़ लेगा, छोड़ेगा नहीं।

जो गुरु उपदेश देता है भगवान् से मिलने का, वह भगवान् से बड़ा होता है और वही हमारा सबसे बड़ा सुहृद है –

तुलसी सो सब भाँति परम हित पूज्य प्रानते प्यारो ।
जासों होय सनेह राम-पद, एतो मतो हमारो ॥

यह जीव भूला हुआ है, इसे भगवान् से मिलने की याद ही नहीं है; बस खाने-पीने, घूमने-फिरने, भोग भोगने आदि में ही लगा हुआ है। अतः इसको विशुद्ध सन्तजन याद दिलाते हैं – 'अरे भाई ! भगवान् से मिलने के लिए तुम मनुष्य बने हो।' तब उसको याद आती है – 'हाँ, मुझे भजन करना है।' नहीं तो कौन भजन करता है, लड्डू-पूड़ी, कचौड़ी, भोगादि में ही सारा जीवन चला जाता है। कोई ऐसा सन्त मिल जाए जो स्मृति को जगा दे लेकिन ऐसा सन्त मिलना दुर्लभ है। भगवान् की कृपा से ही ऐसे विशुद्ध संत मिलते हैं।

संत बिशुद्ध मिलहिं परि तेही ।
चितवहिं राम कृपा करि जेही ॥

(रा.च.मा.उत्तर. ६९)

भगवान् ने जब पृथु जी से वरदान माँगने को कहा, तब राजा पृथु ने कहा – हे प्रभो ! मैं ऐसा वर नहीं माँगता हूँ कि रुपया-पैसा दे दो, भोग दे दो।

कोई भी बुद्धिमान मनुष्य ऐसी चीज नहीं माँग सकता जिसमें विकार हों। यह भोग तो नरक में भी मिलता है। गन्दे नाले में कितने कीड़े होते हैं, हमारे शरीर में न जाने कितने कीड़े हैं, लेकिन वहाँ भी उन्हें भोग मिल जाता है। शूकर बनोगे तो शूकरी मिल जायेगी, गधा बनोगे तो गधी पहले मिल जायेगी, कुत्ता बनोगे तो कुतिया पहले मिल जायेगी। ये भोग तो नरक में भी मिलता है। अतः मैं यह सब नहीं माँगता हूँ। भगवान् बोले – फिर क्या माँगते हो? वह बोले –

न कामये नाथ तदप्यहं क्वचिन्न यत्र युष्मच्चरणाम्बुजासवः ।
महत्तमान्तर्हृदयान्मुखच्युतो विधत्स्व कर्णायुतमेष मे वरः ॥

(भा. ४/२०/२४)

मैं मुक्ति नहीं चाहता, फिर चाहते क्या हो? महापुरुषों के मुख से जो आपकी अमृतमयी लीला-कथा निकलती है, उसका पान करने के लिए दस हजार कान चाहता हूँ क्योंकि इन दो कानों से तृप्ति नहीं होती। यदि आपके चरणों की कथा नहीं है तो हम मोक्ष भी नहीं चाहते हैं।

जो कथा महात्माओं के मुख से निकलती है, उस कथा में वह शक्ति होती है कि वह स्मृति जगा देती है – 'अरे ! शरीर विनाशी है, थोड़ी देर में हम लोग मर जाएँगे। भगवान् की शरण में चलना चाहिए।' हर आदमी की कथा में यह ताकत नहीं है, जो स्मृति को जगा दे।

स उत्तमश्लोक महन्मुखच्युतो
भवत्पदाम्भोजसुधाकणानिलः ।
स्मृतिं पुनर्विस्मृततत्त्ववर्त्मनां
कुयोगिनां नो वितरत्यलं वरैः ॥

(भा. ४/२०/२५)

जो महात्मा लोग कथा कहते हैं, उनके हृदय में भगवान् के चरणकमल विराजमान रहते हैं, अतः भगवान् के चरणों के अमृत को लेकर के उनके मुख से जो हवा निकलती है, उसमें ऐसी ताकत होती है कि वह ध्रुवास्मृति जगा देती है परन्तु जो अभक्त है जिसके हृदय में भगवान् नहीं हैं, रुपया-पैसा है, लड्डू-पेड़ा है, भोग है, तो उसके मुख से जो हवा निकलेगी, वह रुपया-पैसा को लेकर निकलेगी, भोग को लेकर निकलेगी, जिससे शुद्ध स्मृति नहीं आयेगी। जिसके हृदय में भगवान् के चरण-कमल हैं, उसी के शब्दों में यह ताकत होगी कि वह तुमको स्मृति दिला देगी कि भगवान् से मिलना है। उनके मुख से जब मनुष्य कथा सुनता है तब उसे याद आती है कि हमलोग भूल चुके हैं कि भगवान् से मिलना है। अन्धे होकर पैसा कमा रहे हैं, अन्धे होकर 'भोग' भोग रहे हैं। पैसे और भोग के पीछे यह याद ही नहीं है कि भगवान् से मिलना है। ऐसे हमलोगों को केवल महापुरुषों का सत्संग मिल जाए, बस हम यही वर चाहते हैं।

अध्यात्म का प्रवेश द्वार – 'असंगता'

भगवद् रस का विरोधी है काम और जब तक मन में काम है, वहाँ प्रभु राम नहीं हैं, इस बात को सबसे पहले समझ लेना चाहिए।

जहाँ काम तहाँ राम नहिं, जहाँ राम नहिं काम ।
तुलसी कबहुँक रहि सकें, रवि रजनी एक ठाम ॥

जहाँ राम हैं, वहाँ संसार की कोई कामना नहीं है, इसको भलीभाँति समझ लेने के बाद फिर साधन पथ पर चलो, वरना पीछे धोखा खाने से क्या फायदा? भगवान् ने गीता में कहा है कि मुझ परमात्मा से मिलना है तो संसार को छोड़ना पड़ेगा, आसक्तियों को छोड़ना पड़ेगा।

न रूपमस्येह तथोपलभ्यते नान्तो न चादिर्न च सम्प्रतिष्ठा ।
अश्वत्थमेनं सुविरूढमूलमसङ्गशस्त्रेण दृढेन छित्त्वा ॥

(गी. १५/३)

ये जो दिखाई पड़ते हैं धन-सम्पत्ति, स्त्री-पुत्रादि ये सब थोड़ी देर को दिखाई पड़ते हैं क्योंकि कोई चीज यहाँ रुकने वाली नहीं है। न हमारा शरीर, न स्त्री, न बेटा-बेटी, न धन-सम्पत्ति। एक मिथ्या प्रकृति है सब। इस संसार का कहीं अन्त नहीं है, भोगते चले जाओ, मरते चले जाओ, मर जाओगे उससे भी इसका अन्त नहीं होगा। इसकी कोई शुरुआत नहीं है, कब से हम चले हैं, कितने दिन हो गये, कितने जन्म बीते, ये सब पता नहीं है। फिर वर्ष की और काल की गणना क्या की जाए? कोई चीज यहाँ टिकने वाली नहीं है। करोड़ों रुपए कमा लो, सारे संसार का राज्य जीत लो लेकिन जब मृत्यु होगी तब कुछ भी काम में नहीं आयेगा।

अरब खरब लौं द्रव्य है, उदय अस्त लौं राज ।
तुलसी जो निज मरन है, तेहि आवै कौन्हे काज ॥

जहाँ से सूर्य उदय होता है और जहाँ अस्त होता है, वहाँ तक राज्य है लेकिन मृत्यु होने पर सब मिट्टी में चला जाएगा। इस संसार की कोई प्रतिष्ठा नहीं है। रावण की अनगिनत संतानें थीं, अकेले मेघनाद ने इन्द्र को जीता था। ऐसे परमवीर उसके अनगिनत लड़के थे। एक मन्वन्तर तक उसने राज्य किया था। एक कहावत भी है –

इक लख पूत सवा लख नाती,
ता रावण घर दिया न बाती ।

इतने प्रभावशाली रावण का भी ये हाल हुआ कि अन्त में उसके कुल में कोई रोने वाला भी नहीं बचा। अनगिनत परिवार, संतानें थीं, सब नष्ट हो गयीं।

राम बिमुख अस हाल तुम्हारा ।
रहा न कोउ कुल रोवनिहारा ॥

(रा.च.मा.लंका. १०४)

इसीलिये गीता में भगवान् ने कहा कि इस संसार की कोई प्रतिष्ठा नहीं है परन्तु फिर भी हम खुश होते हैं कि हमारा मकान बन गया, हवेली बन गयी, बेटा-बेटी का ब्याह हो गया, ये सब थोड़ी देर में चला जाएगा। तुम कितना भी हाथ से पकड़ो लेकिन संसार में कोई चीज टिकने वाली नहीं है। पैसे के लोभ में लोग f.d. (fixed deposit) कराते हैं लेकिन सब कुछ विनाशी है परन्तु फिर भी हमारी आसक्तियाँ नहीं मिटती हैं। सूरदास जी ने लिखा –

तुम्हरो कृष्ण कहत कहा जात ।
प्रान लिये जम जात मूढ़ मति देखत जननी तात ॥

"अरे मूर्ख, सब कुछ छोड़कर कृष्ण-कृष्ण क्यों नहीं कहता? माँ-बाप देख रहे हैं उनके सामने बच्चा मर जाता है, लेकिन बच्चे

को वे बचा नहीं सकते।" कुटुम्ब-परिवार, स्त्री, बेटा-बेटी, धन-सम्पत्ति आदि में ही जीव फँसा हुआ है? इसलिए भगवान् ने कहा – ऐसे मिथ्या संसार को त्यागकर तुम भजन करना चाहते हो, मुश्किल काम है। तुम भजन नहीं कर सकते हो। साधु बन जाओगे तो वहाँ भी नोट सँभालोगे। लड्डू-पूड़ी, कचौड़ी आदि के लिए ही घूमा करोगे, कथा कहते घूमा करोगे, यहाँ हमारी कथा है, वहाँ है। अब इतना धन आ जायेगा। इसलिए सबसे पहले हाथ में असंगता की तलवार ले लो। कैसी तलवार? दृढ़ तलवार, जिसकी धार कभी मुड़े नहीं। तब तुम इस संसार की आसक्ति को काट सकते हो, नहीं तो घर से निकलकर वही काम करोगे जो गृहस्थ लोग करते हैं। असंगता की तलवार जब तक हाथ में नहीं होगी, तब तक कुछ नहीं होगा। आज यही हो रहा है समाज में, लोग घर से निकलते हैं और फिर संग्रह करने लग जाते हैं। आँख खोलकर देखो तो चारों ओर यही दिखाई पड़ रहा है। उस तलवार को लेकर जब तुमने आसक्ति का बन्धन काटा, अब तुम चलो भगवान् को ढूँढ़ने। किस पद को ढूढ़ें?

ततः पदं तत्परिमार्गितव्यं यस्मिन्गता न निवर्तन्ति भूयः ।
तमेव चाद्यं पुरुषं प्रपद्ये यतः प्रवृत्तिः प्रसृता पुराणी ॥

(गी. १५/४)

जिस पद को पाकर मनुष्य फिर संसार में नहीं लौटता, उस अविनाशी पद को ढूँढ़ो। नहीं तो साधु बनने के बाद भी धन-सम्पत्ति, मान-सम्मान, वैभव-ऐश्वर्य यही सब ढूँढ़ोगे। कितने लोग घर से निकलते हैं तब वैराग्य की भावनाएँ रहती हैं, परन्तु धीरे-धीरे वे सब खत्म हो जाती हैं। इसलिए पहले हाथ में असंगता की तलवार लो। उससे सब आसक्तियों को काट डालो। उसके काटने के बाद फिर निकलो घर से। तब उस जगह पर पहुँचने के लिए कोशिश करो, जिसको पाने के बाद जीव फिर संसार के चक्र में नहीं फँसता। अब उसको कैसे ढूँढ़ें? तपस्या करें कि योग करें

कि व्रत करें, आखिर क्या साधन करें? बोले – कुछ मत करो। बस उसकी शरण में चले जाओ और कोई साधन करने की आवश्यकता नहीं है। हम लोग तो रोज कहते हैं – प्रभु ! हम तेरी शरण में हैं परन्तु सिर्फ ऐसा कहते ही हैं, करते नहीं हैं। 'शरण' माने क्या होता है? 'श्री हिंसायाम्' धातु से ल्युट् प्रत्यय करके 'शरण' शब्द बना है, जिसका अर्थ है – 'मार डालो।' क्या स्त्री को मार डालें कि बेटा-बेटियों को मारें? नहीं, अपने आपको मार डालो; तब क्या जहर खा लें? नहीं, जहर खाने से शरीर मरता है, तुम नहीं मरते हो। जहर खाने वाले भूत बनते हैं, लाखों वर्ष तक भूत बनकर तड़पते हैं। शरीर तुम्हारा नहीं है, जिसको तुमने खत्म किया, यह तो भगवान् के द्वारा दिया हुआ था, उसका दण्ड मिलता है। अतः फिर हिंसा किसकी करें? हिंसा अपने 'मैं' पने (अहंता) की करो क्योंकि उसके बिना शरणागति नहीं मिलेगी। जब तक किसी भी प्रकार का अहं-भाव है, तब तक भगवान् की शरण नहीं मिलेगी। इसलिए इस 'अहम्' रूपी शत्रु की बिल्कुल हिंसा कर दो, जिससे सदा के लिए अविचल **भगवद्भक्ति (भगवद्शरण)** मिल जाएगी और सदा के लिये आनन्दमय बन जाओगे।

मोरें तुम प्रभु गुरु पितु माता

एकमात्र भागवत धर्म में ही कहा गया कि भगवान् ही सब कुछ हैं, केवल भगवान् की शरणागति ही सब कुछ है। जीव का कर्तव्य यही है कि वह भगवान् की शरण में चला जाए। न माँ, न बाप, न पुत्र-पुत्री, न स्त्री, न पति, एकमात्र भगवान् ही सब कुछ हैं, सारे सम्बन्ध एकमात्र भगवान् से ही होने चाहिए। भागवत में स्वयं कपिल भगवान् ने कहा है –

न कर्हिचिन्मत्पराः शान्तरूपे
नङ्क्ष्यन्ति नो मेऽनिमिषो लेढि हेतिः ।
येषामहं प्रिय आत्मा सुतश्च
सखा गुरुः सुहृदो दैवमिष्टम् ॥

(भा. ३/२५/३८)

"काल उन भक्तों का नाश नहीं कर सकता, जिन्होंने मुझको (भगवान् को ही) सब कुछ मान लिया; जिनका मैं ही प्रिय हूँ, मैं ही आत्मा हूँ, स्वरुप हूँ, मैं ही बेटा हूँ, मैं ही सखा हूँ, मैं ही गुरु हूँ, मैं ही सुहृद हूँ, मैं ही दैव हूँ, मैं ही इष्ट हूँ, सब सम्बन्ध मुझमें जोड़ लिए।" यद्यपि साम्प्रदायिक लोग कहते हैं कि गुरु करना आवश्यक है और ठीक भी है, लेकिन यदि गुरु सच्चा सद्गुरु नहीं है तो वह शिष्य का नाश कर देगा। वैसे भी आज के इस युग में कोई सच्चे सद्गुरु का मिलना बड़ा मुश्किल है। इसलिए गुरु भी भगवान् को मान लेना चाहिए, सब सम्बन्ध भगवान् से जोड़ लेने चाहिए। रामायण में लक्ष्मण जी ने भगवान् श्री राम जी से कहा –

गुर पितु मातु न जानउँ काहू ।
कहउँ सुभाउ नाथ पतिआहू ॥

(रा.च.मा.अयो. ७२)

हे नाथ ! "मैं जानता नहीं कि माता, पिता, गुरु क्या होता है? मेरे तो सब कुछ आप ही हैं।" स्वयं भगवान् ने कहा है –

गुरु पितु मातु बंधु पति देवा ।
सब मोहि कहँ जानै दृढ़ सेवा ॥

(रा.च.मा.अरण्य. १६)

"गुरु मैं हूँ, पिता मैं हूँ, माँ मैं हूँ, बन्धु मैं हूँ, पति मैं हूँ, देव मैं हूँ, सब कुछ मैं हूँ।"

पिता अगर भक्त नहीं है तो वह अपनी संतान को भक्ति से हटा देता है, माँ भी यदि भक्त नहीं है तो अपनी सन्तान को भगवत्शरणागति से हटा देगी। पति अगर भक्त नहीं है तो अपनी स्त्री को भक्ति से हटा देगा। इसलिए सब झगड़े छोड़ो। भगवान् कहते हैं – सब मुझे ही मान लो। गुरु भी मान लो, माता-पिता भी मान लो, यह स्वयं भगवान् राम ने कहा है।

इसी बात को फिर शंकर जी ने कहा पार्वतीजी से –

उमा राम सम हित जग माहीं ।
गुरु पितु मातु बंधु प्रभु नाहीं ॥

(रा.च.मा.किष्कि. १२)

शंकर जी ने कहा – "हे उमा, भगवान् ही प्रिय हैं, वैसा प्यार न गुरु कर सकता है, न माता, न पिता, न बन्धु।" इस पर लोग बहस करते हैं कि नहीं गुरु करना जरूरी है, नहीं तो सद्गति नहीं होगी। भागवत् में गुरु का विरोध नहीं किया गया है, गुरु भगवान् को माना गया है।

एक सम्प्रदाय, एक आचार्य की बहुत-सी शाखाएँ हो जाती हैं और उसमें आपस में मतभेद हो जाता है, उस मतभेद में भक्तापराध शुरू हो जाता है और वह अपराध इतना भयंकर होता है कि भगवान् सब अपराध सह लेते हैं किन्तु भक्तापराध नहीं सह पाते

हैं। आज सभी सम्प्रदायों में यही हो रहा है। इसीलिए हिन्दू समाज संगठित नहीं है, विभाजित है, विभक्त है।

भगवान् ने कहा – मेरा भक्त जितना मुझे प्रिय है, उतना न ब्रह्मा प्रिय हैं, न शंकर, न संकर्षण। हमारा भक्त कैसा है?

निरपेक्षं मुनिं शान्तं निर्वैरं समदर्शनम् ।
अनुव्रजाम्यहं नित्यं पूयेयेत्यङ्घ्रिरेणुभिः ॥

(भा. ११/१४/१६)

मेरा भक्त अपेक्षारहित, मननशील, शान्त, वैर-रहित, समदर्शितादि गुणसम्पन्न परममंगलकारी, पवित्रकारी होता है। मैं भी उसके पीछे-पीछे घूमता हूँ ताकि उसकी चरण-रेणु मेरे ऊपर पड़ जाए और मैं भी पवित्र हो जाऊँ। विशुद्ध-भक्ति ही एकमात्र जीव का कर्तव्य है। अब विशुद्ध-भक्ति क्या है? सभी चीजों को छोड़कर एकमात्र भगवान् की अनन्य शरण लेना, यही विशुद्ध-भक्ति है। अधर्मों को तो छोड़ना ही पड़ता है लेकिन साथ-साथ धर्मों को भी छोड़ना पड़ता है। भगवान् ने गीता में कहा –

सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज ।
अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः ॥

(गी. १८/६६)

अर्जुन ! एकमात्र मेरी शरण में आ जा। मैं तुझे सब पापों से छुड़ा दूँगा। ये सब वेद-पुराणादि का सार है। अनन्य शरणागति ही भागवत् धर्म का एकमात्र लक्ष्य है। यही अहैतुकी भक्ति का लक्षण है।

स वै पुंसां परो धर्मो यतो भक्तिरधोक्षजे ।
अहैतुक्यप्रतिहता ययाऽऽत्मा सम्प्रसीदति ॥

(भा. १/२/६)

जिससे भगवान् में अहैतुकी भक्ति हो जाए, वही सबसे बड़ा धर्म है।

राधे किशोरी दया करो

हे किशोरी राधारानी ! आप मेरे ऊपर दया करिये। इस जगत में मुझसे अधिक दीन-हीन कोई नहीं है, अतः आप अपने सहज करुण स्वभाव से मेरे ऊपर भी तनिक दया दृष्टि कीजिये।

राधे किशोरी दया करो ।
हम से दीन न कोई जग में, बान दया की तनक ढरो।
सदा ढरी दीनन पै श्यामा, यह विश्वास जो मनहि खरो।
विषम विषय विष ज्वाल माल में, विविध ताप तापनि जु जरो।
दीनन हित अवतरी जगत में, दीनपालिनी हिय विचरो।
दास तुम्हारो आस और (विषय) की, हरो विमुख गति को झगरो।
कबहुँ तो करुणा करोगी श्यामा, यही आस ते द्वार पर्‌यो॥

मेरे मन में यह सच्चा विश्वास है कि श्यामा जू सदा से दीनों पर दया करती आई हैं। मैं अनादिकाल से माया के विषम विष रूपी विषयों की ज्वालाओं से उत्पन्न अनेक प्रकार के तापों की आग में जलता आया हूँ। इस जगत में आपका अवतार दीनों के कल्याण के लिए हुआ है। हे दीनों का पालन करने वाली श्री राधे ! कृपा करके आप मेरे हृदय में निवास कीजिये। मैं आपका दास होकर भी संसार के विषयों और विषयी प्राणियों से सुख पाने की आशा किया करता हूँ। आप मेरी इस विमुखता के क्लेश का हरण कर लीजिए। हे श्यामा जू ! जीवन में कभी तो ऐसा अवसर आएगा जब आप मेरे ऊपर करुणा करेंगीं, इसी आशा के बल पर मैंने आपके द्वार पर डेरा जमा लिया है।

श्री मान मन्दिर सेवा संस्थान, गहवर वन, बरसाना, मथुरा, उत्तर प्रदेश
२८१ ४०५ भारतवर्ष द्वारा प्रकाशित

रसीली ब्रज यात्रा

लेखिका

ब्रज बालिका मुरलिका शर्मा

प्राप्त करने के लिये सम्पर्क करें:

ms@maanmandir.org

ISBN : 978-81-928073-0-0